ग़ैर इस्लामी हुकूमत
और
मुसलमान

लेखक –
मौलाना जलाल उद्दीन उमरी रह०

अनुवादक –
डॉ० रफ़ीक अहमद

यह तसवीर ग़लत है

इस्लाम का अध्ययन मुख़्तलिफ़ पहलुओं से हो सकता है। यहाँ एक खास रुख़ से इस का अध्ययन पेशे नज़र है। वह यह कि इस्लाम के ताल्लुक़ से यह तसव्वुर देने की कोशिश की जाती हैं कि वह ग़ैर इस्लामी हुकूमत और ग़ैर इस्लामी समाज के ख़िलाफ़ नफ़रत और दुशमनी के तीव्र जज़्बात उभारता है, उसे किसी क़ीमत पर स्वीकार नहीं करता और अपने मानने वालों को उससे संर्घष और बग़ावत के लिये आमादा करता है। इसलिये इस्लाम के मानने वाले ग़ैर इस्लामी राज्य के वफ़ादार नागरिक नहीं हो सकते। उन पर विश्वास करना इसके लिये मुश्किल होगा, वह दुशमन से सांठ-गांठ तक कर सकते हैं, हुकूमत से उनकी ख़ैर ख्वाही हमेशा संदेहास्पद रहेगी। ग़ैर मुस्लिम आबादी के साथ वह मिल जुल कर नहीं रह सकते, उनका रवइया नुकसान पहुँचाने वाला होगा। इससे उनके तालुक़ात अच्छे नहीं होंगे। ग़ैर मुस्लिम उनसे मुहब्बत व मेल-जोल और बेहतर बर्ताव की उम्मीद नहीं कर सकते। उनकी जान व माल और मान-मर्यादा को उनसे हर समय ख़तरा रहेगा। इन आरोपों का पूरी दुनिया में पूरब से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक चर्चा तो है लेकिन कहीं से कोई सुबूत नहीं एकत्र किया जा सका है। मुसलमानों की सदियों पर फैली हुई लम्बी तारीख में

किसी ग़ैर इस्लामी मुल्क में उनका यह भयानक किरदार सामने नहीं आया परन्तु उनके साथ भेदभाव और ज़ुल्म व ज़्यादती की खूंनी घटनायें इतिहास के पन्नों में दर्ज है। हक़ीक़त यह है कि इस्लाम और मुसलमानों के ख़िलाफ़ एक खास ज़हन है जो कभी दबे लफ्ज़ों में और कभी खुले शब्दों में सामने आता रहता है। उनमें वह लोग भी हैं जिन्हें खुलकर इस्लाम के ख़िलाफ़ अपने जज़्बात के इज़हार में अस्मंजस की स्थिति रहती है लेकिन बहरहाल वह भी मुसमानों को ख़तरनाक अवश्य महसूस करते हैं।

देखना यह कि जो मुसलमान किसी ग़ैर इस्लामी मुल्क या ग़ैर इस्लामी समाज में रहते बसते हैं, उन्हें इस्लाम ने क्या हिदायतें दी हैं। उनके लिये उसके क्या आदेश हैं और उन्हें किन बातों की शिक्षा दी गई है? इसी से यह फ़ैसला किया जा सकेगा कि जो फ़र्द या गिरोह वइ इस्लामी शिक्षाओं का पाबन्द है उसकी किसी ग़ैर मुस्लिम हुकूमत में क्या भूमिका होगी वह मुल्क का शुभचिन्तक होगा या अशुभचिन्तक, मुल्क की फ़िज़ा को गन्दा और माहौल को ख़राब करेगा या उसे बेहतर बनाने की कोशिश करेगा, उसकी कूव्वतें और योग्यतायें निर्माण में लगेंगी या विनाश का ज़रिया साबित होगीं, दूसरे धर्मों के मानने वालों से उसके संबन्धों का क्या हाल होगा और उससे किस अखलाक़ व किरदार की अपेक्षा की जाएगी?

इस्लामी हिदायतें क्या हैं?

ग़ैर इस्लामी राज्य या ग़ैर मुस्लिम समाज में रहने वाले मुसलमानों के लिये इस्लाम ने विशेष निर्देश यह दिया है कि वह हर हाल में अपने अक़ीदा और आस्था पर मज़बूती से क़ायम रहें,

उसके अनुसार मुम्किना हद तक ज़िन्दगी गुज़ारें। अक़ीदा और आस्था को किसी भी वक्त और किसी भी हालत में न छोड़ा जा सकता है और न उसमें कोई परिवर्तन और बदलाव किया जा सकता है। इस्लाम की यह हिदायत मौजूदा दौर के तसलीम शुदा इस उसूल के ठीक मुताबिक़ हैं कि हर व्यक्ति को अपने अक़ीदे पर क़ायम रहने और उस पर अमल करने का क़ानूनी हक़ हासिल है। इस्लाम अपने मानने वालों को उस हक़ के इस्तेमाल का हुक्म दे तो उस पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती। यह किसी की शत्रुता और दुशमनी पर आधारित नहीं हैं इसलिये उससे मायूस होने की भी ज़रूरत नहीं है।

इस्लामी शिक्षाओं से यह भी स्पष्ट है कि ग़ैर इस्लामी हुकूमत का मुसलमान नागरिक हुकूमत का और अपने वतन का शुभचिन्तक और हमर्दद होता है, ग़द्दारी और बेवफ़ाई उसकी आस्था और धर्म के ख़िलाफ़ है। उसकी ज़िम्मेदारी है कि जिस मुल्क में रहे इस्लामी फ़िक्र के तहत उसके निर्माण और तरक्की की कोशिश करे, उसे सही फ़िक्र, बुलन्द अख़लाक़ और पाकीज़ा सियासत से परिचय कराऐ, उसके सामने अल्लाह तआला के उतारे हुये निज़ामे हयात (जीवन व्यवस्था) उसके राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून और उनकी समानता और सन्तुलन को दलीलों के साथ पेश करे। उसने न्याय, इन्साफ़ और समानता का जो बेमिसाल तसव्वुर दिया है और मानवाधिकारों के सम्मान पर जो ज़ोर और जो ताकीद उसके यहाँ पाई जाती है, उस पर ग़ौर व फ़िक्र की दावत दे और अमली तौर पर उस निज़ामे फ़िक्र व अमल को बरपा करने की अखलाक़ और क़ानून के दायरे में कोशिश करें।

इस दुनिया में हर इन्सान अपने कुछ बुनियादी अधिकार रखता है, उनकी हिफ़ाज़त ज़रूरी है। उनके बग़ैर वह समाज में अपनी भूमिका अदा नहीं कर सकता, बल्कि उसका वजूद ही हर पल खतरे में रहेगा। उन अधिकारों का हनन हो तो हर मज़हब और क़ानून ने उसे रक्षा का अधिकार दिया है। इस्लाम दुनिया के हर क़ानून से पहले उसके उस अधिकार को क़ुबूल करता है।

एक मुसलमान के लिये लाज़िम है कि वह अपनी धार्मिक और नैतिक ज़िम्मेदारियों को कभी नज़रअंदाज़ न करें, खुदा से उसका ताल्लुक मज़बूत से मज़बूत तर हो। उससे ज़िन्दगी के कठिन और सख्त हालात में उसे दिली सुकून, और हिम्मत व हौसला मिलेगा और जमाव नसीब होगा। वह खुद भी ख़ैफ़े ख़ुदा और परहेज़गारी (धर्म परायणता) की ज़िन्दगी गुज़ारे और समाज में भी अच्छाई और दया भाव का माहौल पैदा करने की कोशिश करे। उसके साथ वह बुलन्द अख़लाक़ वाला और चरित्रवान हो। इन्सान को इन्सान की हैसियत से देखे, उसके अधिकार पहचाने, विराधी विचार और अक़ीदा के लोगों से भी अच्छे संबन्ध रखे और उनके साथ शिष्टता, शराफत और शिष्टाचार का रवइया इख़्तियार करे।

मुसलमान इन शिक्षाओं का पाबन्द है। उसके तरीक़े फ़िक्र से तो इख़्तिलाफ़ किया जा सकता है। लेकिन क़ानूनी और नैतिक लिहाज़ से किसी भी समाज में उसे अपनी यह भूमिका अदा करने से मुक्त रखने का कोई औचित्य नहीं है।

दीन की बुनियादी मांगें

जो मुसलमान ग़ैर इस्लामी हुकूमत के नागरिक हैं उन्हें

अपने दीन व ईमान के सिलसिले में इस्लाम ने जो हिदायतें दी हैं, पहले उनका ज़िक्र किया जाता है। लेकिन एक बात की स्पष्टीकरण ज़रूरी है। वह यह कि इस्लाम ने अपने मानने वालों को जो हिदायतें दी हैं या उसकी जो बुनियादी मांगें हैं, उनका सम्बंध मक्की दौर से भी है, जिस में मुसलमान एक ग़ैर इस्लामी समाज में ज़िन्दगी गुज़ार रहे थे और मदनी दौर से भी है जहाँ पूरी तरह से इस्लामी समाज क़ायम था, इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि इन हिदायतों और निर्देशों का पाबन्द सिर्फ इस्लामी समाज है या ग़ैर इस्लामी समाज ही से उनका सम्बंध है। उनकी अहमियत दोनों तरह के समाजों के लिये है।

दीन पर जमाव

किसी भी ग़ैर इस्लामी राज्य में एक मुसलमान के लिये धार्मिक दृष्टि से कम या ज़्यादा छोटे या बडे भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्यायें हो सकती हैं। इसकी भी सम्भावना है कि हालात कुछ बेहतर हों और हालात के प्रतिकूल होने की भी सम्भावना है। उसका सम्बंध ग़ैर इस्लामी राज्य, क़ानून, शासकों के रवइये और अवाम के स्वभाव से है। उसमें इस बात का भी दख़ल है कि खुद इस्लाम के मानने वाले अपना धार्मिक, नैतिक और सियासी वज़न कितना रखते हैं और उनमें अपने मसाएल को हल करने की कितनी ताक़त है?

क़ुरआन मजीद ने अहले ईमान को हर तरह के हालात में हौसले और हिम्मत के साथ अपने दीन पर क़ायम रहने और उसके मुताबिक़ अमल करने की तालीम दी है, कि हालात कितने ही सख़्त क्यों न हों और माहौल कितना ही खराब क्यों न हो, मर्दे

मोमिन को दीन पर जमाव, मज़बूती और बहादुरी का सुबूत देना चाहिये। हालात की सख्ती और संगीनी से घबराकर दीन व ईमान से दूर हो जाना या उसमें किसी प्रकार का समझौता कर लेना किसी साहबे ईमान के लिये जायज़ नहीं है। इसके लिये हैसियत भर बड़ी से बड़ी क़ुरबानी से भी उसे बचना नहीं चाहिये मक्के के संगीन हालात और सख़्त आज़माइश के दौर में बार-बार दीन पर जमे रहने की हिदायत की गई और उस पर आखिरत की कामयाबी और जन्नत की ख़ुश खबरी सुनाई गयी। इरशाद हैः

> बेशक वह लोग जिन्होंने कहा कि हमारा रब अल्लाह है और फिर उस पर जमे रहे, उन पर फ़रिश्ते उतरते हैं और उनसे कहते हैं कि तुम न खौफ़ खाओ और न ग़म करो। तुम्हारे लिये इस जन्नत की ख़ुशख़बरी है जिस का तुमसे वादा किया जा रहा है। हम दुनिया की ज़िन्दगी में भी तुम्हारे दोस्त रहे हैं और आखिरत में भी रहेंगें। तुम्हारे लिये वहाँ वह सब कुछ है जो तुम्हारा जी चाहेगा और तुम्हारे लिये वह सब कुछ है जिसकी तुम मांग करोगे। यह माफ़ करने वाली और रहम करने वाली हस्ती की तरफ़ से मेज़बानी होगी।
>
> (हा मीम० अससजदाः ३०,३१)

संगीन और सख़्त हालात में जमे रहने पर जन्नत की यही खुश खबरी एक और जगह इन अल्फ़ाज़ में दी गयी हैः

> बेशक वह लोग जिन्होंने ने कहा कि हमारा रब अल्लाह है फिर इस पर जमे रहे उनके लिये न ख़ौफ़ है और न वह ग़मगीन होगें। यह जन्नत वाले हैं उसमें हमेशा

रहेगें। यह उनके आमाल का बदला होगा, जो वह अन्जाम दे रहे थे।

अल्लाह के दीन पर जम जाने का एक पहलू यह है कि आदमी मुख़ालिफ़ माहौल में उसके दीन की तरफ़ लगातार दावत देता रहे, उसका हक़ होना साबित करे, उसके बारे में जो शक-शुबहे और ग़लतफ़हमियां पाई जाऐं उन्हें दूर करे और इस बात पर सन्तुष्ट करने की कोशिश करें कि वही दुनिया और आख़िरत में कामयाबी का वाहिद ज़रिया है। सूरह शूरा मक्की सूरह है। उसमें बताया गया है कि अल्लाह तआला के जितने बडे-बडे पैग़म्बर दुनिया में आए सबको अक़ामते दीन यानी दीन को क़ायम करने का हुक्म दिया गया था। यही हुक्म हज़रत मोहम्मद सल्ल० को भी दिया जा रहा है। पिछली क़ौमों ने इस तालीम को भुला दिया। (आयत १३,१४) उसके बाद इरशाद हुआः

> पस तुम (पिछले पैग़म्बरों के) उसी दीन की तरफ दावत दो और इस तरह जमे रहो जिस तरह हुक्म दिया गया है। उनकी इच्छाओं की पैरवी न करो और कहो कि मैं ईमान लाता हूँ हर उस किताब पर जो अल्लाह ने उतारी है। मुझे तुम्हारे दरम्यान इन्साफ़ करने का हुक्म दिया गया है। अल्लाह हमारा रब और तुम्हारा रब है। हमारे लिये हमारे आमाल हैं और तुम्हारे लिये तुम्हारे आमाल, हमारे और तुम्हारे दरम्यान कोई मोहब्बत नहीं है। अल्लाह हम सबको जमा करेगा और उसी की तरफ पलट कर जाना है। (अल शूराः १५)

इस आयत से एक बात यह निकलती है कि ग़ैर इस्लामी

राज्य में दावत व तबलीग़ को इस्लाम अपना एक बुनियादी हक़ क़रार देता है। वह चाहता है कि उसे यह हक़ हासिल रहे ताकि जो शख्स इस्लाम को अल्लाह के दीन की हैसियत से स्वीकार करना चाहे उसकी राह में कोई रूकावट न हो। आज के दौर में इस हक़ीक़त को स्वीकार कर लिया गया है कि किसी भी अक़ीदे और आस्था को स्वीकार करना उसके अनुसार अमल करना और उसका प्रचार करना हर नागरिक का बुनयादी हक़ है।

इस आयत से दावत के कुछ बुनियादी सिद्धान्त भी सामने आते हैं उनकी रिआएत ज़रूरी है। इसमें सबसे पहले ग़ैर इस्लामी माहौल में इस्लाम की दावत और दृढ़ता का हुक्म है, इसके बाद हिदायत है कि मुखालिफ़ों की इच्छाओं की पैरवी न हो। दूसरे शब्दों में उन्हें खुश करने के लिये अपने अक़ीदे और फ़िक्र को छोड़ देना ग़लत है। दावत व तबलीग़ (प्रचार-प्रसार) में बहस-मुबाहसा और कट हुज्जती न की जाये। अक़ीदा और फ़िक्र के मामले में हर एक की आज़ादी के हक़ को कुबूल किया जाए। अक़ीदे के मतभेद हों या ज़िन्दगी के समाजी मामले और मसाएल इन सब में न्याय और इन्साफ़ का रवइया इख़्तियार किया जाए। इस में कुछ और हिदायतें भी हैं। एक मुसलमान इनमें से हर एक का पाबन्द है। ये इतनी तर्कसंगत हिदायतें हैं कि मौजूदा दौर का बड़े से बड़ा अक़्लमन्द भी इनमें से किसी हिदायत को ग़लत नहीं ठहरा सकता।

दीन में तब्दीली न होगी

ग़ैर इस्लामी हुकूमत में दीन को बदलने और उसे बिगाड़ने की कोशिश भी हो सकती है, ताकि उसकी विशिष्टता और

ख़ासीयत बाक़ी न रहे और वह ग़ैर इस्लामी सोच और सभ्यता से मिल जाए। इसके लिये शासक वर्ग अपनी इच्छा के मुताबिक़ दीन की व्याख्या और तफ़्सीर करके उसे स्वीकार करने पर मजबूर कर सकता है, इसका मौक़ा न हुआ और नीति और मसलहत उसकी इजाज़त न दे तो ख़ुद दीन के मानने वालों के सामने उसमें बदलाव और निरस्त की मांग की जा सकती है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इसके लिये आर्थिक और सियासी दबाव, प्रलोभन और लालच, क़ानून बनाकर ग़र्ज़ मुख्तलिफ़ तरीक़े अपनाये जा सकते हैं। यह मज़हबी ज़ोर और ज़बरदस्ती की एक बदतरीन रुप है, उसे इस्लाम कभी क़ुबूल नहीं करता। चुनांचे मुश्रिकीने अरब की मांग थी कि क़ुरआन में परिवर्तन करके उनके ग़लत अक़ीदे को भी उसमें जगह दी जाए ताकि वह उनके लिये क़ाबिल क़ुबूल हो सके, क़ुरआन ने इस मांग को बिल्कुल ठुकरा दिया और कहा कि अल्लाह की किताब में एक शब्द का हेर-फेर या कमी व बेशी कदापि सम्भव नहीं है। इसके मानने वाले उसकी पैरवी के पाबन्द हैं। उसे बदलने का अल्लाह ने उन्हें कोई अधिकार नहीं दिया है। इरशाद हैः

> और जब हमारी स्पष्ट आयतें उनको पढकर सुनाई जाती हैं तो वह लोग जो हमसे मुलाक़ात की उम्मीद (आख़िरत पर ईमान) नहीं रखते कहते हैं कि इसके सिवा कोई क़ुरआन पेश करो या कम से कम उसमें परिवर्तन कर दो। उनसे कहो कि मैं अपनी तरफ़ से कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। मैं तो इस वही की पैरवी करता हूँ जो मुझपर की जाती है। अगर मैं अपने

रब की अवहेलना करूं तो मुझे बड़े दिन के अज़ाब का डर है।

(यूनुसः १५)

इस मामले में मुश्रिकीन की तरफ़ से रसूलुल्लाह सल्ल० पर बड़ा ज़बरदस्त दबाव था और तरह तरह की तदबीरें की जा रही थीं लेकिन अल्लाह तआला ने अपने फ़ज़्ले ख़ास से आप को सदृढ़ता और मज़बूती से नवाज़ा और ज़र्रा बराबर आप अपने मौक़िफ़ (stand) से पीछे नहीं हटे। यह उम्मत के लिये हिदायत थी कि इस तरह के हालात में उन्हें मज़बूती का भरपूर सुबूत देना चाहिये। विरोधियों की इच्छाओं के सामने झुक जाना बडे घाटे का सौदा होगा।

> कुछ दूर न था कि यह तुम्हें फ़ितने में डाल कर इस वही से हटा देते जो हमने तुम पर की है ताकि उसके सिवा कोई दूसरी चीज़ गढ़ कर हमारी तरफ़ जोड़ दो। इस सूरत में वह तुम्हें ज़रूर अपना दोस्त बना लेते। अगर हम तुम्हें मज़बूत न रखते तो तुम कुछ न कुछ उनकी तरफ झुक जाते। उस वक़्त हम तुम्हें दुनिया में भी दोगुना अज़ाब और मौत के बाद भी दोगुना अज़ाब देते। फिर तुम हमारे मुक़ाबले में कोई मददगार न पाते। (बनी इसराइल ७३-७५)

अल्लाह तआला ने अपने दीन में न तो बदलाव और परिवर्तन की और न ही अपने मानने वालों को इजाज़त दी हैं और न किसी दूसरे को। ईमान वालों की ज़िम्मेदारी है कि इस तरह की हर मांग और मुतालबे को ठुकरा दें और ऐसी हर कोशिश को नाकाम बना दें।

अम्र बिल मारूफ़ वनही अनिल मुन्कर (अच्छाई का हुक्म देना और बुराई से रोकना)

इस दुनिया में आम इन्सानों के बीच एक मुसलमान को जो रोल अदा करना है उसे ''अम्र बिल मारूफ़ वनही अनिल मुन्कर'' कहा गया है। यह बड़ा व्यापक और विस्तृत काम है। मारूफ़ (नेकी, अच्छाई) में सही अक़ीदा और सोच, शिष्टाचार, मानव अधिकार, समानता और न्याय व इन्साफ़ जैसी वह तमाम ख़ूबियां आती हैं जिन्हें अल्लाह के दीन की प्राथमिकता हासिल है और जिन के मारूफ होने की अक़्ल और फ़ितरत गवाही देती है। इसके विपरीत जो वैचारिक और व्यवहारिक रवइया इख़्तियार किया जाए उसे ''मुन्कर'' कहा जाता है। उसमें झूठी आस्थयें और विचार, ग़लत नीति, इन्सानी बिरादरी या उसके किसी भी वर्ग की तौहीन ज़ुल्म व ज़्यादती जैसा आचरण शामिल है। यह वह किरदार है जिसे अल्लाह के दीन की मन्ज़ूरी हासिल नहीं है और जिसे इन्सान की फ़ितरत और सदबुद्धि नापसन्द और ग़लत क़रार देती है।

'अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर' का पहला तक़ाज़ा यह है कि दुनिया को शिर्क, (बहुदेव वाद) कुफ़्र और अर्धम के नुकसानात से सचेत किया जाए और इस्लाम के तौहीदे ख़ालिस (विशुद्ध एकेश्वरवाद) के तसव्वुर को दलीलों के साथ पेश किया जाए। इस वक्त पूरी दुनिया को भौतिकवाद ने अपने शिकन्जे में बुरी तरह कस रखा है। उसकी वैचारिक और फ़िक्री तरबियत पूरी तरह से भौतिकवादी दृष्टिकोण से हो रही है। उसका रहन-सहन, समाजिकता, अर्थ और सियासत उसी के अधीन हैं। व्यक्तिगत

और गिरोही फ़ायदों के टकराव ने दुनिया को नारकीय बना रखा है। अध्यात्मिक और नैतिक मूल्य बुरी तरह तबाह हो रहे हैं। यूँ महसूस होता है जिसे हर फ़र्द और हर गिरोह ने ज़ुल्म व ज़्यादती, अन्याय और झूठ व फ़रेब को बग़ैर किसी झिझक के अपना तरीकेकार बना लिया है और क़दम-क़दम पर मानवाधिकार का हनन हो रहा है।

इसके बिल्कुल विपरीत इस्लाम इन्सान के भौतिक और अध्यात्मिक तक़ाज़ों को बेहतर ढ़ंग से पूरा करता है। उसकी बुनियादी धारणा यह है कि तमाम इन्सान अल्लाह के बन्दे हैं और उन्हें सिर्फ़ उसी की इबादत और उपासना करनी चाहिये और उसकी हिदायत का पाबन्द होना चाहिये। यह किसी क़ौम या किसी मुल्क का दीन नहीं है। इसका ख़िताब हर एक इन्सान से है। वह सब के लिये दुनिया और आख़िरत की कामयाबी की राहें खोलता है। वह सही अर्थों में इन्सान के लिये दीने रहमत है।

'अम्र बिल मारूफ़' यह है कि दुनिया को हक़ और सच्चाई की, अमन व शान्ति की, ईमानदारी और अमानत की इज़्ज़त और पाकदामनी की और तमाम पवित्र मूल्यों और श्रेष्ठ नैतिकता की शिक्षा दी जाए। 'अम्र बिल मारूफ़' यह है कि एक दूसरे के अधिकार बयान किये जाऐं और उन्हें अदा करने पर ज़ोर दिया जाए। एक-एक फ़र्द के दिल व दिमाग़ में यह हक़ीक़त उतार दी जाए कि दुनिया का हर फ़र्द कुछ अधिकार रखता है इन अधिकारों को अदा करना ज़रुरी है। रिश्तेदारों और क़राबतदारों ही के नहीं, पडोसियों, के अजनबियों और यात्रियों के अक़ीदे और मज़हब में इख़्तिलाफ़ रखने वालों के, हम वतनों और दूसरे वतन वालों के

भी अधिकार हैं। उनकी जान, माल, और इज़्ज़त व आबरू की हर हाल में हिफ़ाज़त होनी चाहिये। उसके विपरीत झूठ, बेईमानी, वादा खिलाफ़ी, व्यभिचार और अश्लीलता जैसी बुराइयां और नैतिकता से गिरे हुए सारे कर्म 'मुन्कर' हैं। इसी तरह ज़ुल्म, हक़ मारना, एहसान न मानना, रक्तपात, क़त्ल व ग़ारतगरी और इन्सानी अधिकारों की तबाही भी ''मुनकरात'' में आते हैं। उनसे बचाने की कोशिश होनी चाहिये।

इस्लाम चाहता है कि अम्र बिल मारूफ़ वनही अनिल मुन्कर (नेकी का हुक्म देना व बुराई से रोकना) के इस बड़ी ज़िम्मेदारी को अदा करने के लिये उम्मतें मुस्लिमा खड़ी हो जाए और उसका हर फ़र्द उसके लिये अपनी ताक़त और असरात को जहां तक सम्भव हो इस्तेमाल करे। जो शख्स उपदेश व नसीहत कर सकता है वह उपदेश व नसीहत और रग़बत और प्रलोभन के ज़रिये अच्छाइयों को फैलाऐ और बुराइयों को खत्म करने की कोशिश करे, जिसके लिये पढ़ने-पढ़ाने और तालीम के मौके हासिल हैं वह इस ज़रिये से यह फ़र्ज़ अदा करे। ग़र्ज़ यह कि एक मुसलमान जिस दायरे में भी 'अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर' का फ़र्ज़ अन्जाम दे सकता है, उसकी कोशिश होनी चाहिये कि उस दायरे में यह फ़र्ज़ ज़रूर अन्जाम पाए। इसके लिये वक़्त ज़रूरत ज़ाती और समाजी असर और ताल्लुक़ात और सियासी ताक़त का इस्तेमाल भी सही होगा। किसी को यह ताक़त होगी कि अपने घर और परिवार को अच्छाइयों और नेकियों का पाबन्द बनाए और बुराइयों से दूर रख सके। कोई इस हैसियत में होगा कि अपनी बस्ती में नेकियां क़ायम कर सके और बुराइयां मिटा

सके। किसी को अपने शहर में इस पर अमल का मौक़ा और क़ूव्वत हासिल होगी और कोई हुकूमत की सतह पर उसे अन्जाम देने की स्थिति में होगा।

इस्लाम की तालीम यह है कि उम्मते मुस्लिमा ''अम्र बिल मारूफ़ वनही अनिल मुन्कर'' यानी नेकियों की ओर बुलाने और बुराइयों से रोकने के लिये खडी हो जाऐ। उसका हर फ़र्द नेकियों के लिये माहौल को बेहतर बनाने और बुराइयों के ख़िलाफ़ माहौल को तैयार करने में अपनी कोशिश और जद्दो जहद करे। यह वह काम है जिसे इस उम्मत को इस्लामी राज्य में भी अन्जाम देना है और ग़ैर इस्लामी राज्य में भी। इसी से उसकी पहचान और ख़ुसूसी हैसियत बाक़ी रहेगी और वह अल्लाह की रहमत और दया की पात्र होगी।

इन्साफ़ पर क़ायम रहना और इन्साफ़ क़ायम करना

इस्लाम ने हर हाल में न्याय व इन्साफ़ पर क़ायम रहने और उसकी पाबन्दी का हुक्म दिया है। इरशाद है।

> तुम कह दो मेरे रब ने न्याय और इन्साफ़ का हुक्म दिया है। (अल आराफ़ः २९)
>
> एक और जगह इरशाद है :
>
> बेशक अल्लाह हुक्म देता है इन्साफ़ का और एहसान का और क़राबतदारों को (उनका हक़) देने का और खुली बेहयाई, बुराइ और ज़ुल्म से मना करता है। वह तुम्हें नसीहत करता है शायद तुम नसीहत हासिल करो। (अल नहलः ९०)
>
> यहाँ इन्साफ़ और एहसान के हुक्म के साथ ज़ुल्म व

ज़्यादती से मना किया गया है। यह दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। जहाँ न्याय और इन्साफ़ होगा वहाँ ज़ुल्म व ज़्यादती क़दम न जमा सकेगी और जहाँ ज़ुल्म की हुक्मरानी होगी, इन्साफ़ रूखसत हो जाएगा। इस्लाम ने अपने मानने वालों को एक ऐसी उम्मत की हैसियत से उभारा है जो अल्लाह के दीन का ध्वज वाहक होगा और दुनिया में अदल व इन्साफ़ की गवाही देगी। वह उन्हें इस बात की हरगिज़ इजाज़त नहीं देता कि वह किसी शख्स या गिरोह पर ज़ुल्म व ज़्यादती करे चाहे उससे कितने ही मतभेद क्यों न हों और उसने कितनी ही ज़्यादती क्यों न की हो। अदल व इन्साफ़, तक़्वा और परहेज़गारी की अलामत है और मुसलमान किसी हाल में तक़्वा और परहेज़गारी का दामन नहीं छोड़ सकता। क़ुरआन मजीद में यह बात बड़ी तफ़्सील के साथ बयान हुई हैः

> ऐ ईमान वालों! अल्लाह (की ख़ुशी) के लिये खड़े होने वाले बन जाओ, अदल व इन्साफ़ की गवाही देने के लिये। किसी क़ौम की दुशमनी तुम्हें इस पर उकसा न दे कि तुम इन्साफ़ के रास्ते से हट जाओ। इन्साफ़ करो, यह तक़्वा से बहुत क़रीब है और अल्लाह से डरते रहो। अल्लाह जो कुछ तुम करते हो उससे बाखबर है। (अल माएदाः ८)

क़ुरआन मजीद ने यह हक़ीकत भी खोल कर रख दी है कि जब कोई क़ौम अल्लाह की नाफ़रमानी और ज़ुल्म व ज़्यादती की राह इख़्तियार करती है तो अल्लाह तआला उसे एक वक़्ते ख़ास तक मोहलत देता है। फिर उसकी मोहलत ख़त्म हो जाती है और वह अल्लाह के प्रकोप की भागीदार हो जाती है। उसके सुबूत में

वह तारीख़ का हवाला देता है। चुनांचे फ़रमायाः

तुम्हारे रब की पकड़ इस तरह होती है जबकि वह ज़ुल्म की राह पर चलने वाली बस्तियों को पकड़ता है। बेशक उसकी पकड़ र्दनाक और सख़्त है। (हूदः१०२)

रसूले खुदा सल्ल० ने अल्लाह ताअला की इस सुन्नत का इन अल्फ़ाज़ में ज़िक्र फ़रमाया हैः

बेशक अल्लाह तआला ज़ालिम को ज़रूर मोहलत देता है, लेकिन जब उसे पकड़ता है तो उसे छोड़ता नहीं है। (बुख़ारी)

रसूले खुदा सल्ल० ने पीड़ित की आह से बचने की ताकीद फ़रमाई है। आपने हज़रत मआज़ को यमन के गर्वनर की हैसियत से भेजा तो कुछ नसीहतें फ़रमाईं। इनमें एक नसीहत यह थी :

मज़लूम (पीड़ित) की दुआ से बचो इसलिये कि इस दुआ और अल्लाह के दरम्यान कोई और नहीं है। (बुखारी)

हज़रत अली रज़ि० की रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्ल० ने फरमायाः

मज़लूम की दुआ से बचो इसलिये कि वह तो अल्लाह तआला से अपना हक़ मांगता है और अल्लाह तआला किसी हक़दार को उसके हक़ से मना नहीं करता। (बुखारी)

इसी विषय की एक और हदीस में फ़रमाया गया है, पीड़ित चाहे ग़ैर मुस्लिम ही क्यों न हो उसकी बद्दुआ से बचो। (जामेउस्सग़ीर)

इसका मतलब यह है कि मज़लूम कोई भी हो और उस पर किसी भी तरह की ज़्यादती हुई हो, अल्लाह तआला उसकी दुआ ज़रूर सुनेगा और यक़ीनन उसकी मदद करेगा।

मज़लूम (पीड़ित) जब इस एहसास के साथ अल्लाह को पुकारता है कि ज़ालिम के मुक़ाबले की उसमें ताक़त नहीं है। सिर्फ़ वही उसकी मदद और उसके अधिकारों की हिफ़ाज़त कर सकता है तो अल्लाह तआला के दरबार में उसकी फ़रियाद बग़ैर किसी रूकावट के पहुँचती है और उसके लिये क़ुबूलियत का दरवाज़ा खुल जाता है। अल्लाह तआला किसी हक़दार को उसके हक़ से वंचित नहीं करता।

एक और रिवायत में ज़ुल्म करने ही से नहीं ज़ालिम का साथ देने उसकी मदद व तरफ़दारी करने और उसे क़ूव्वत पहुँचाने पर भी सख़्त धमकी आयी है। चुनांचे हज़रत औस बिन शरजील रज़ि० फ़रमाते हैं कि मैंने रसूल अल्लाह सल्ल० को इरशाद फ़रमाते सुना हैः

> जो शख़्स किसी ज़ालिम के साथ चले ताकि उसे क़ूव्वत पहुँचाए और वह जानता भी हो कि वह ज़ालिम है तो वह इस्लाम (के तरीक़े) से निकल गया। (मिश्कात)

इसका मतलब यह है कि जानते-बूझते ज़ुल्म की तरफ़दारी करना और ज़ालिम की मदद में खड़ा होना किसी मुसलमान की शान के ख़िलाफ़ है या यह कि यह ईमान वालों का तरीक़ा नहीं है। ज़ुल्म की ताईद करके आदमी मुसलमानों के तरीक़े से भटक जाता है।

यह हक़ीक़त उम्मत के हर फ़र्द के ज़ेहन में हमेशा ताज़ा

रहनी चाहिये कि वह न्याय और इन्साफ़ का दाओी और आमंत्रक है। उसने ज़ुल्म की राह अपनाई तो इस्लाम की स्पष्ट शिक्षाओं के खिलाफ़वरज़ी का मुजरिम होगा और अल्लाह के प्रकोप को दावत देगा। मुसलमान जहाँ कहीं भी हों और जिस समाज में भी हों उसका दामन ज़ुल्म व ज़्यादती से पाक होना चाहिये। वह किसी पर ज़्यादती न करे, किसी ज़ालिम का साथ न दे बल्कि ज़ुल्म के ख़िलाफ़ खड़ा हो जाये।

इन्सानी अधिकारों का सम्मान

इन्सान को कुछ बुनियादी अधिकार हासिल हैं। उनमें उसे ज़िन्दा रहने माल के लिये दौड़-धूप करने, अपना माल और जायदाद रखने और उसको इस्तेमाल करने और इज़्ज़त और प्रतिष्ठा के साथ ज़िन्दगी गुज़ारने का हक़ सबसे नुमायां है। इन अधिकारों के बग़ैर उसका पूरा वजूद सख्त खतरे में रहेगा और ज़िन्दा रहे भी तो जानवरों की सतह पर ज़िन्दगी गुज़ारने पर मजबूर होगा। इस्लाम इन सारे अधिकारों के सम्मान की शिक्षा देता है और समाज में उनकी हिफ़ाज़त की फ़िज़ा पैदा करता है। वह चाहता है कि उसके मानने वाले एक एक फ़र्द की पहचान, उन अधिकारों के रक्षक और संरक्षक की हो। वह अहले ईमान की ख़ूबी यह बयान करता है कि उनके हाथ किसी के नाहक़ खून से कभी सने नहीं होते और लोगों की इज़्ज़त व आबरू उनसे सुरक्षित रहती है।

> (अल्लाह के नेक बन्दे वह हैं जो) अल्लाह के साथ दूसरे माबूद को नहीं पुकारते और जिस नफ़्स के क़त्ल का अल्लाह ने हराम ठहराया है उसे क़त्ल नही करते।

सिवाए इसके हक़ व इन्साफ़ उसका तक़ाज़ा करे और बदकारी नहीं करते। जो यह करेगा वह अपने गुनाह का बदला पायेगा। (अल फ़ुरक़ान ६८)

वह नाजायज़ तरीक़े से दौलत नहीं समेटते, किसी ग़रीब और मुहताज का शोषण नहीं करते बल्कि उनकी अपनी कमाई हुई दौलत में मांगने वालों और निर्धनों का और जीवन-संसाधनों से वंचित इन्सान का निश्चित हिस्सा होता है। वह उसे उसमें शामिल ख़्याल करते हैं।

और वह जिन के मालों में निश्चित हक़ है मांगने वालों और मुहताजों का। (अल माअरिजः २४,२५)

आदमी को अपने बीवी-बच्चों, माँ-बाप और अफ़राद व ख़ानदान से जज़बाती लगाव होता है, कभी-कभार वह अपनी ज़ात से ज़्यादा उनसे मोहब्बत करता है। उनका हक़ है और उसकी नैतिक और क़ानूनी ज़िम्मेदारी है कि उनकी कामयाबी और तरक़्क़ी की और उनको हर तरह के नुकसान से सुरक्षित रखने की कोशिश करे। इसी तरह समाज के दूर व नज़दीक के और लोगों के भी अधिकार हैं। एक ईमान वाला अपने ईमान के तक़ाज़े के तहत उन सबको अदा करेगा और अपने संसाधनों व ज़रियों को उनके लिये इस्तेमाल करेगा। क़ुरआन मजीद ने नेकी की राह बताते हुए उसका एक खास पहलू यह बयान किया हैः

जिसने अपना माल उससे मोहब्बत के बावजूद दिया रिश्तेदारों को, अनाथों, निर्धनों, मुसाफ़िरों और मांगने वालों को और गुलामों के आज़ाद करने में अपना माल खर्च किया। और नमाज़ क़ायम की और ज़कात अदा की। (अल बक़राः १७७)

जो शख़्स रिश्तेदारों ही के नहीं बल्कि समाज के कमज़ोर लोगों और वर्गों, अनाथों, ग़रीबों, मुसाफिरों, मोहताजों, निर्धनों, गुलामों के अधिकारों का ख़्याल रखे, अपने जीवन-संसाधनों में उनका हक़ मानें और उसे अदा करने की कोशिश करे, क्या उसके बारे में सोचा जा सकता है कि वह किसी के हक़ पर हमला करेगा और उसे हड़प करेगा?

एक मुसलमान का यह रवइया सिर्फ़ अपने परिवार, क़बीले और जाति ही के साथ नहीं होगा बल्कि समाज के सारे वर्गों के साथ होगा, चाहे वह उसके धर्म को मानने वाले हों या दूसरे धर्म के मानने वाले।

बचाव का हक़

दुनिया का हर सभ्य समाज और हर सभ्य हुकूमत का संविधान इस बात को स्वीकार करता है कि यह इन्सान का एक स्वाभाविक अधिकार है कि वह अपने बुनियादी अधिकारों की रक्षा करे और किसी को उन पर ज़्यादती की इजाज़त न दे। उसकी जान, माल और इज़्ज़त व प्रतिष्ठा पर कोई हाथ उठाए तो उसका मुक़ाबला करे। अपने बीवी, बच्चों और परिवार वालों को किसी ओर से ज़ुल्म व ज़्यादती का शिकार न होने दे और उनकी जाल, माल और इज़्ज़त व आबरू की हर तरह से हिफ़ाज़त करे। एसी सूरतें भी पेश आती रहती हैं जबकि आदमी पर अपना और अपने परिवार वालों का बचाव अनिवार्य हो जाता है।

इसी तरह एक सभ्य समाज के हर व्यक्ति का यह हक़ है कि वह पीड़ितों और मज़लूमों का रक्षा करे और ज़ालिम का जवाब दे। अगर किसी के घर डाकू घुस आऐं और उस पर हमला कर दें

और उसका माल व दौलत लूटने लगें तो ख़ुद उसे भी बचाव का हक़ है और पास पड़ोस के लोगों की भी ज़िम्मेदारी है कि उसकी मदद करें और उसे ज़ुल्म व ज़्यादती से बचाऐं। उसमें अगर हमला करने वाला मारा जाए तो बचाव करने वाले की कोई ज़िम्मेदारी न होगी। इसलिये कि हमलावर मुजरिम है और बचाव करने वाले का कोई जुर्म नहीं है। वह तो उसे जुर्म से रोकने की कोशिश कर रहा है। अगर बचाव करने वाला इस कोशिश में मारा जाए तो वह हमर्दर्दी का पात्र ठहरेगा और उसकी नैतिक और क़ानूनी मदद ज़रूरी होगी।

दफ़ा और बचाव के इस हक़ को दुनिया का हर सभ्य क़ानून स्वीकार करता है। इस्लाम ने भी उसे एक बुनियादी हक़ के तौर पर माना है। उसके नज़दीक इन्सान को अपनी जान, माल, इज़्ज़त व आबरू और अपने परिवार की रक्षा का पूरा हक़ हासिल है। एक मुसलमान की जान इस राह में चली जाए तो वह शहादत का मुक़ाम हासिल करेगा। रसूलुल्लाह सल्ल० के अनेक कथनों में इसकी वज़ाहत मौजूद है। यहाँ एक रिवायत पेश की जा रही है। हज़रत सईद बिन ज़ैद रज़ि० फरमाते हैं कि मैंने रसूलुल्लाह सल्ल० को कहते हुये सुना हैः

> जो शख्स अपने माल की हिफ़ाज़त में मारा जाए वह शहीद है। जो अपने दीन की हिफ़ाज़त में मारा जाए वह शहीद है। जो अपनी जान की हिफ़ाज़त में मारा जाए वह शहीद है और जो अपने घर वालों की हिफ़ाज़त में मारा जाए वह शहीद है। (तिर्मिज़ी)

बचाव के सिलसिले में दो बातों का ख्याल रखना ज़रूरी है।

१. यह ज़िम्मेदारी हक़ीक़त में हुकूमत की है कि वह नागरिकों की जान, माल, और इज़्ज़त व आबरू की हिफ़ाज़त करे। किसी शहरी या शहरियों के किसी गिरोह को अपने बचाव की उस वक़्त ज़रूरत पेश आती है जबकि अचानक हमला हो और हुकूमत को अपनी ज़िम्मेदारी अदा करने का मौक़ा न मिले, या वह अपना फ़र्ज़ अदा करने में कोताही करे, इसलिये ज़रूरी है कि जहाँ इन्सान यह देखे कि उसकी जान और माल या बुनियादी अधिकारों को ख़तरों का सामना हैं, पहले हुकूमत को उसकी ज़िम्मेदारी याद दिलाए और उसकी मदद हासिल करने की कोशिश करे। लेकिन अगर उसका मौक़ा न हो या हुकूमत की तरफ़ से बेपरवाई बरती जाए तो आदमी अपने बचाव का पूरा हक़ रखता है।

२. बचाव में इस बात का भी ख्याल रखा जाएगा कि ताक़त का कम से कम इस्तेमाल हो। अगर हमलावर सिर्फ़ डराने धमकाने या शोर मचाने से ही भागने पर मजबूर हो जाये तो उसे ज़ख़्मी करने या क़त्ल करने कोशिश नहीं होगी। उसकी जान उसी वक्त ली जाएगी जबकि उसके अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय कारगर न मालूम हो रहा हो।

आत्मरक्षा का अधिकार एक तय शुदा हक़ है, इससे समाज के सबसे कमज़ोर फ़र्द को भी यह हौसला मिलता है कि उसकी जान, माल, और बीवी बच्चे ज़ालिमों के रहम व करम पर नहीं

हैं। वक़्त ज़रूरत अगर उसे हुकूमत की या क़रीब के किसी व्यक्ति की मदद न भी मिले तो वह खुद अपने बल पर अपनी और अपनी जायदाद और अपने खानदान की हिफ़ाज़त कर सकता है। एक मुसलमान संगीन और सख़्त हालात में अपने उस हक़ का इस्तेमाल करता है तो इस्लाम की शिक्षा पर भी अमल करता है। और वक़्त के क़ानून की भी अवहेलना नहीं करता।

बदला लेने का हक़

इस्लाम ज़ुल्म व ज़्यादती को किसी हाल में उचित नहीं समझता। वह उसको हर तरह से रोकना चाहता है। इसी का एक पहलू यह है कि किसी पर ज़ुल्म हुआ है या उसे कोई नुकसान पहुँचा है तो उसे वह मुजरिम से बदला लेने का हक़ देता है। क़ुरआन मजीद ने बड़े नाज़ुक और मुश्किल हालात में इन्सान के उस हक़ का एलान किया।

सूरह शूरा मक्का में नाज़िल हुई, जहाँ मुसलमान तरह-तरह की ज़्यादतियों के शिकार थे और सख्त मुश्किलात और आज़माइशों के माहौल में ज़िन्दगी गुज़ार रहे थे। इस सूरह में एक जगह अहले ईमान की तारीफ़ की गयी है कि उनके अन्दर अल्लाह तआला पर ईमान और उस पर भरोसा और यक़ीन होता है, उनका दामन बड़े गुनाहों से दाग़दार नहीं होता किसी के ग़लत रवइये से उनके अन्दर जोश और ग़ुस्सा उभरता है तो वह माफ़ी और दर गुज़र से काम लेते है। वह अल्लाह की पुकार पर लब्बैक (मैं हाज़िर हूँ) कहते हैं, नमाज़ क़ायम करते हैं अपने मामलात आपसी सलाह व मशविरा से अन्जाम देते हैं और ख़ुदा की राह में खर्च करते हैं। इन खूबियों के ज़िक्र के बाद फ़रमायाः

यह वह हैं जिन पर ज़ुल्म होता है तो वह बदला लेते हैं।

(अल शूराः ३६)

इससे बाज़ बातें सामने आती हैं।

यह ख़्याल ग़लत है और आयत से उस ग़लत ख़्याल का खन्डन होता है कि अल्लाह के नेक बन्दे कमज़ोर, लाग़र, बुज़दिल और कम हिम्मत होते हैं। उनको जो चाहे ज़ुल्म का निशाना बना सकता है, बल्कि मोमिन और मुत्तक़ी इन्सान वह हैं जो ज़ुल्म के सामने हथियार नहीं डालते, वह ज़ालिम का मुक़ाबला करते हैं, वह तर निवाला नहीं होते कि जो चाहे उन्हें हड़प कर जाए। कोई उन पर ज़्यादती करता है तो उसका जवाब देते हैं। यह उनकी नेकी और तक़वा के विपरीत हरगिज़ नहीं हैं। समाज के नेक लोगों के बारे में अगर यह ख़्याल आम हो जाए कि वह मजबूर और कमज़ोर होते हैं और किसी भी ज़्यादती का जवाब देना उनके बस में नहीं है तो मुख़ालिफ़ माहौल में उनका ज़िन्दा रहना मुश्किल हो जाएगा और समाज पर उसका इन्तेहाई खराब असर पड़ेगा कि लोग बेबसी और कमज़ोरी को नेकी और तक़वा की लाज़मी ख़ुसूसियत समझने लगेगें।

बदला लेने का मतलब है ज़्यादती का बदला लेना। इसका सवाल उसी वक़्त पैदा होता है जबकि किसी पर ज़ुल्म हो। किसी बेगुनाह और बेकुसूर पर हाथ उठाना बदला लेना नहीं बल्कि खुला हुआ ज़ुल्म है। ईमान वालों का दामन उससे पाक होता है, हां उन पर ज़ुल्म हो तो उनको बदला लेने का पूरा हक़ है और उस हक़ के इस्तेमाल को किसी भी तरह नाजायज़ नहीं कहा जा सकता है। बल्कि बाज़ हालात में यह पसन्दीदा क़रार पाता है।

बदला लेने में सीमाओं का ख्याल

इस्लाम ने बदला लेने का हक़ तसलीम करने के साथ इस बात की ताकीद की है कि ज़ुल्म व ज़्यादती जितनी हुई है बदला भी उतना ही हो। उस सीमा से आगे बढ़ना ख़ुद एक ज़ुल्म और जुर्म है।

क़ुरआन मजीद ने इसके लिये ''क़ानूने क़िसास'' रखा है। उसकी बुनियाद बदला लेने में बराबरी के तसव्वुर पर है। इस क़ानून के अनुसार यह बात ग़लत है कि एक व्यक्ति के बदले में दस व्यक्तियों की जान ली जाऐ। औरत क़त्ल हो तो उसके जवाब में किसी बेगुनाह मर्द को क़त्ल किया जाए। ग़ुलाम ने क़त्ल किया है तो उसके बदले आज़ाद को क़त्ल कर दिया जाए (अल बक़राः १७८) ''क़ानूने क़िसास'' की कुछ दफायें तोरैत के हवाले से भी बयान हुई हैं (अल माएदाः ४५) इनमें यह बात स्पष्ट कर दी गयी है कि एक व्यक्ति के जुर्म में दूसरा व्यक्ति नहीं पकड़ा जाएगा। क़ानून की नज़र में सब बराबर होगें। उसमे कमतर और बरतर का फ़र्क़ न होगा। इसी तरह किसी भी व्यक्ति को अगर उसने बड़ा या छोटा जुर्म किया है तो उसके जुर्म से ज़्यादा उसे सज़ा नहीं दी जायेगी।

बदला लेने के अधिकार के सिलसिले में इस्लाम ने कुछ सीमायें और तरीके निर्धारित किये हैं और हर हाल में उन पर अमल की ताकीद की है। उनकी तफ़सीलात क़ुरआन व हदीस और उल्मा ये शरीअत के यहाँ मिलती हैं। कुछ आवश्यक बिन्दु यहाँ पेश किये जा रहे हैंः

१. ज़्यादती का उसी वक़्त जवाब देने का हक़ हासिल है

लेकिन यह उसी हद तक होना चाहिये जिस हद तक ज़्यादती हुई है। यह सही नहीं है कि किसी ने तमांचा मारा तो बदले में उसका हाथ काट दिया जाए। या अपशब्द कहने पर उसके दांत तोड़ दिये जाऐं। यह सरासर ज़ुल्म और अन्याय है। इसका कोई औचित्य नहीं है। क़ुरआन मजीद की बहुत स्पष्ट हिदायत है।

पस जिसने तुम पर ज़्यादती की तो तुम भी उसी जैसी ज़्यादती करो जैसी उसने ज़्यादती की है। (उससे ज़्यादा नहीं) और अल्लाह से डरते रहो और खूब जान लो कि अल्लाह उन लोगों के साथ है जो उससे डरते हैं।

(अल बक़राः १९४)

२. बदला लेने में शरीअत और नैतिक सीमाओं की पाबन्दी ज़रूरी है। मान लीजिये एक व्यक्ति ने किसी को, उसके हाथ पैर कान, नाक काट कर मार डाला या लाश को काटा पीटा और उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले तो बदले के नाम पर क़ातिल के साथ यह रवइया नहीं इख्तियार किया जाएगा बल्कि क़ातिल को क़ानून के अनुसार सिर्फ क़त्ल की सजा दी जाएगी। इसी तरह किसी ने किसी औरत के साथ बलात्कार किया तो उसका बदला यह नहीं है कि उसकी बीवी या बेटी के साथ बलात्कार किया जाए, बल्कि उसे क़ानून के अनुसार उस जुर्म की सज़ा दी जाएगी।

३. ज़बानी ज़्यादतियों का भी जवाब दिया जा सकता है। उसमें भी नैतिक सीमाओं की पाबन्दी करनी होगी। इन सीमाओं से आगे बढ़ना जायज़ नहीं है। जैसे किसी ने गाली गलौज

की तो उसके जवाब में गाली–गलौज की जाए, या इल्ज़ाम और आरोप लगाये जायें या पूरे परिवार पर लानतान शुरू कर दिया जाए।

४. ज़ुल्म व ज़्यादती के ख़िलाफ़ विरोध करना और आवाज़ उठाना जायज़ है ताकि ज़ालिम का ज़ालिम होना बेनक़ाब हो और पीड़ित (मज़लूम) को समाज से मदद मिले। इरशाद हैः

अल्लाह पसन्द नहीं करता (और उस पर सज़ा देगा) कि बुरी बात का बखान और एलान हो। हाँ अगर किसी पर ज़ुल्म हो (और वह उसका बखान करे तो ग़लत नहीं है) अल्लाह सब कुछ सुनता और जानता है। (अल निसाः१४८)

५. बदला लेने के लिये हुकूमती क़ानून की मदद ली जाए। बदले के बहुत से रुप हो सकते हैं कि क़ानून की मदद ही से उन पर अमल हो सकता है उसे नज़र अन्दाज़ करके क़ानून को हाथ में नहीं लिया जाऐगा।

इस तरह की कुछ और भी शर्तें हैं उन्हें निगाह में रखना ज़रूरी है।

बदला लेने का अधिकार ज़ुल्म के खात्मे के लिये है

बदला लेने से किसी स्तर में नुकसान की क्षतिपूर्ति होती है। मज़लूम की इज़्ज़तेनफ़्स बाक़ी रहता है। उसे बेबसी और मज़लूमियत का एहसास नहीं होता। सब से बड़ी बात यह कि बदला लेने के हक़ से ज़ुल्म और ज़्यादती को ख़त्म करने में मदद मिलती है। अगर आदमी को यह हक़ हासिल न हो तो हर तरफ़

ज़ुल्म और ज़ोर की हुकूमत क़ायम हो जाएगी। किसी कमज़ोर की जान, व माल और इज़्ज़त व आबरू सुरक्षित न रहेगी। बदले को अख़लाक़ और नैतिकता के विपरीत भी नहीं कहा जा सकता। बदले की जगह माफ़ी या क्षमा से काम लेना बहुत बड़ी नैतिक खूबी है। उसकी तफ़सील आगे आ रही है। लेकिन अधिकारों की हिफ़ाज़त की भी अहमियत है। बदला उसी के लिये है। क़ुरआन मजीद ने माफ़ी व चश्म पोशी और बदले में से हर एक को मौक़ा व महल के लिहाज़ से सही मुक़ाम दिया है और उसमे एक तरह का संतुलन रखा है। एक तरफ़ तो ईमान वालों की खूबियों के अन्तर्गत कहा गया है कि उन पर ज़्यादती होती है तो वह बदला लेते हैं। दूसरी तरफ उनके सब्र व माफ़ी और अनदेखा करने की तारीफ़ की गयी है। उनमें कोई विपरीतता नहीं है। उसे एक दूसरे से मुख्तलिफ़ रवइयों की तारीफ़ नहीं की जायगी, इसलिये कि दोनों का मौक़ा व महल अलग–अलग है। उलमा ने लिखा है कि यह कोई क़ाबिले तारीफ़ बात नहीं है कि समाज में मुसलमान इतना कमज़ोर और बेबस होकर रहे कि हर शख्स आसानी से उस पर ज़्यादती कर दे। जहाँ यह महसूस हो कि माफ़ी और अनदेखा करने से ज़ालिम का हौसला बढ़ेगा, बेगुनाह उसकी ज़्यादतियों का निशाना बनेगें वहाँ बदला लेना बेहतर है ताकि उसकी हिम्मत टूटे और वह किसी के साथ ज़्यादती की हिम्मत न कर सके, लेकिन अगर आदमी यह देख कि ज़ालिम को अपने ज़ुल्म पर शर्मिन्दगी है वह अपनी ग़ल्ती को महसूस कर रहा है, माफ़ करने से उस पर अच्छे असरात पड़ेगें तो माफ़ करना ज़्यादा अच्छा अमल है। असल बात यह कि ज़ुल्म का अन्त हो और उसी लिहाज़ से माफ़ी व दर गुज़र या बदले का मामला किया जाए।

अल्लामा इब्न अरबी मालिकी रह० कहते हैं कि सूरह शूरा में प्रतिशोध या बदला लेने का ज़िक्र एक क़ाबिले तारीफ़ अमल की हैसीयत से आया है। दूसरे जगहों पर माफ़ी व अनदेखा करने की तारीफ़ की गयी है। इसकी दो व्याख्यायें हो सकती हैं। एक यह कि उन में से एक ने दूसरे को निरस्त कर दिया है। दूसरी व्याख्या यह है कि उनको दो अलग-अलग सूरत मान ली जाये, (यही सही है) एक सूरत यह है कि या ज़ालिम एलानिया ग़लतकारी कर रहा है, आम लोगों से बदज़ुबानी करता हो, बेहयाई और अश्लीलता फैला रहा हो, छोटे-बड़े को तकलीफ़ पहुँचाता हो। ऐसे व्यक्ति से बदला लेना बहुत अच्छा है। इस सूरते हाल के बारे में इमाम नख़ई रज़ि० ने कहा है कि वह (बुज़ुर्ग) इसे नापसन्द करते थे कि आदमी ख़ुद को इस क़दर नीच और कमज़ोर बनाए रखे कि अन्यायी और ज़्यादा निडर हो जाऐ।

दूसरी सूरत यह कि ग़ल्ती किसी से संयोग वश हो जाये और वह अपनी ग़ल्ती को मान ले और माफ़ी का इच्छुक हो तो उसे माफ़ कर देना बेहतरीन अमल है।

अल्लामा कुरतबी ने इस स्पष्टीकरण की तारीफ़ की है। फ़रमाते हैं कि क्या तिबरी ने भी यही स्पष्टीकरण दिया है।

(अल जामेउल एहकाम)

इमाम राज़ी रज़ि० फ़रमाते हैं कि माफ़ी व दर गुज़र के नतीजे में फ़ितना व फ़साद कम हो रहा है और ग़लत कार अपना रवइया छोड़ रहा है तो माफ़ करना पसन्दीदा है। लेकिन अगर माफ़ी व दर गुज़र से अपराधी का हौसला बढ़ जाए और उसके ज़ुल्म व ज़्यादती को क़ूव्वत पहूँचे तो बदला लेना सही है।

(तफ़सीर कबीर)

यह बातें बज़ाहिर इस्लामी समाज के पेशे नज़र कही गयी हैं। ग़ैर इस्लामी समाज में एक मुसलमान का आम रवइया माफ़ी व दर गुज़र ही का होना चाहिये लेकिन उसे ऐसे हालात से भी सामना हो सकता है जबकि वह क़ानून की सीमाओं के अन्दर बदले का हक़ इस्तेमाल करने और फ़रियाद के लिये कोशिश पर मजबूर हो जाए।

मुस्लिम और ग़ैर मुस्लिम तालुक़ात

इस वक़्त दुनिया के अधिकतर देशों में मिश्रित और मिली जुली आबादियाँ है। उनमें ज़्यादातर भिन्न-भिन्न नस्लें, भिन्न-भिन्न संस्कृतियां, भिन्न-भिन्न धर्म और भिन्न-भिन्न भाषायें पायी जाती हैं। इन मुल्कों का एक हिस्सा बहुसंख्यकों पर आधारित है तो दूसरा हिस्सा अल्पसंख्यकों पर। दोनो की अपनी-अपनी समस्यायें हैं और वह उन्हें हल करने की कोशिश भी करती हैं। प्रजातान्त्रिक देशों में अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक के समान अधिकार तसलीम किये गयें हैं। लेकिन इसके बावजूद आम तौर से अल्पसंख्यक बहुसंख्यकों का दबाव महसूस करते हैं और उनके अधिकारों की पूरी तरह रक्षा नहीं हो पाती। उनका एक बड़ा मसला आपस के सम्बंधों का भी है। जिन देशों में मुसलमान अल्पसंख्यक में हैं वहाँ एक सवाल बार-बार सामने आता है कि बहुसंख्यक के साथ उनके सम्बन्ध किस प्रकार के होने चाहिये? क्या वह उन्हें अलग-थलग और दूर-दूर रखेगें या उनसे क़रीबी सम्बंध रखेगें, यह सम्बंध किसी ख़ास दायरे में सीमित होगा या उनका दायरा काफ़ी बड़ा होगा। वह उन्हें अपना विरोधी और मुख़ालिफ़ समझ कर मामला करेगें या उनका रवइया उनके

साथ प्रेम व मुहब्बत, हमदर्दी और अच्छे बर्ताव का होगा? यह आज का एक नाज़ुक मसला है। इस पर कुछ ख़ास पहलुओं से ग़ौर करना होगा, इससे इस्लाम के दृष्टिकोण को बेहतर तरीक़े से समझा जा सकेगा।

१. समाज में एक व्यक्ति के दूसरे व्यक्ति पर और एक समुदाय के दूसरे समुदाय पर बिल्कुल जायज़ और फ़ितरी अधिकार होते हैं। यह अधिकार आपस के सम्बंधों की नौइयत निर्धारण करते हैं। उनके अदा करने या न करने से ताल्लुक़ात में बेहतरी व ख़ूबी या फ़साद और ख़राबी पैदा होती है। जिस हुकूमत में ग़ैर मुस्लिम बहुसंख्यक हों ज़रूरी नहीं कि वहाँ हर व्यक्ति और हर वर्ग के अधिकार हमेशा सुरक्षित ही हों। यह अधिकार ख़त्म भी हो सकते हैं अगर उनके यह अधिकार छीने जा रहे हों तो मुस्लिम अल्पसंख्यक का क्या रवइया होगा? क्या वह उनकी हिमायत में खड़ी होगी या ख़ामोश रहेगी?

२. यह एक हक़ीक़त है और इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस्लाम ने बहुत ही बुलन्द अख़लाक़ की शिक्षा दी है, और अपने मानने वालों को उसका पाबन्द बनाया है। क्या यह अख़लाक़ और शिष्टाचार सिर्फ मुसलमानों के लिये हैं या ग़ैर मुस्लिमों से ताल्लुक़ात में भी वह उनके पाबन्द होगें और उनके साथ वही अख़लाक़ी रवइया अपनाएगें जो रवइया वह मुसलमानों के साथ इख्तियार करते हैं?

३. मुसलमान एक ऐसी उम्मत है जिसकी ज़िन्दगी का बड़ा

मक़सद अल्लाह की ओर दावत है। एक ग़ैर मुस्लिम समाज में उसकी दावती ज़िम्मेदारियां बहुत बढ़ जाती हैं। देखना यह है कि इन ज़िम्मेदारियों को अदा करने के लिये क़ुरआन मजीद ने क्या हिदायतें दी हैं और मुख़ातब क़ौम से किस तरह के ताल्लुक़ात का हुक्म दिया है?

मज़लूम (पीड़ितों) के अधिकारों की हिमायत

सबसे पहले इन्सानी अधिकारों के मसले को लीजिये। समाज में एक व्यक्ति या समुदाय के जो जायज़ और फ़ितरी अधिकार स्वीकार किये जाऐं वही दूसरे व्यक्ति और समुदाय को क़ानूनी तौर पर हासिल हों, और अमलन अदा किये जाऐं तो उनके दरम्यान सम्बंध अच्छे होगें वरना उनमें ज़रुर बिगाड़ पैदा होगा और टकराव शुरू हो जाएगा।

इन्सान जिस समाज में रहता है, उसके बहुत से लोगों से उसके दूर व नज़दीक का सम्बंध होता है, इस पर उन सबके कम या ज़्यादा हुक़ूक आयद होते हैं। इस्लाम ने यह सारे अधिकार स्वीकार नहीं किये हैं बल्कि उन्हें अदा करने की सख़्त ताकीद की है। यह अधिकार जिस तरह एक मुसलमान के हैं उसी तरह ग़ैर मुस्लिम के भी हैं। यहाँ कुछ हवाले दिये जा रहे हैं।

> रिश्तेदारों, ग़रीबों और यात्रियों को उनका हक़ अदा करो, और अपनी दौलत बेजा मत खर्च करो।
>
> (बनी इसराइलः२६)

इन अधिकारों में से कुछ की विशेषता क़ानूनी है, लेकिन यह ज़्यादा तर नैतिक हैं, इसी वजह से उनके लिये क़ुरआन मजीद में 'एहसान' का लफ्ज़ आया है। जिस के माएने हैं अच्छा बर्ताव

करना, ख़ैर और भलाई का रवइया इख़्तियार करना और अच्छा मामला करना। इरशाद हैः

> और अल्लाह की इबादत करो और उसके साथ किसी को शरीक न करो और एहसान करो माँ बाप के साथ, रिश्तेदारों, यतीमों, ग़रीबों और क़राबतदार पड़ौसी, अजनबी पड़ौसी और साथ में रहने वाले के साथ और मुसफ़िरों और ग़ुलामों के साथ। अल्लाह तआला उस शख़्स को नापसन्द करता है जो इतराता और डींगें मारता है। (अल निसाः३६)
>
> बनी इसराइल से जिन मामलों की पाबन्दी का अहद (प्रतिज्ञा) लिया गया था उनमें एहसान का यह रवइया भी शामिल था। (अल बक़राः ८३)

एहसान या अच्छे सुलूक में मोहब्बत, हमदर्दी, नसीहत और ख़ैर ख्वाही के साथ आर्थिक मदद भी शामिल है। चुनांचे सूरह बक़रा में 'बिर्र' यानी अच्छे सुलूक की हक़ीक़त बयान हुई है, इसके ज़ेल में इरशाद हैः

> और माल की मुहब्बत के बावजूद उसे खर्च करे रिश्तेदारों, यतीमों, मोहताजों, मुसाफिरों, मांगने वालों और ग़ुलामों पर (उनको आज़ाद करने के लिये) और नमाज़ क़ायम करे और ज़कात दें। (अल बक़राः १७७)
>
> वह आपसे सवाल करते हैं कि क्या खर्च करें? उनसे कह दीजिये जो कुछ भी तुम अपना माल खर्च करो वह माँ-बाप और क़राबतदारों, यतीमों और मोहताजों और मुसाफ़िरों के लिये हो और जो भलाई तुम करोगे

अल्लाह उसे अच्छी तरह जानता है।

(अल बक़राः २१५)

एक इन्सान पर समाज के जिन व्यक्तियों और वर्गों के अधिकार लागू होते हैं उनका ज़िक्र क़ुरआन मजीद की मक्की सूरतों में भी है और मदनी सूरतों में भी। मक्के में जिस वक्त क़ुरआन नाज़िल हो रहा था समाज के कमज़ोर, अधीन और बेबस लोगों के ही अधिकार ख़त्म नहीं हो रहे थे बल्कि क़रीबी रिश्तेदारों के अधिकारों पर भी और ख़ूनी रिश्तेदारों पर भी ज़्यादती हो रही थी। इस्लाम ने उसके ख़िलाफ़ आवाज़ बुलन्द की और जिन लोगों के हाथों यह अधिकार छीने जा रहे थे, उन्हें दुनिया और आख़िरत में उसके भयानक नतीजों से सचेत किया। इस तरह इस्लाम ज़ुल्म के खिलाफ़ और मज़लूमों की हिमायत में खड़ा हो गया। उस वक्त मुसलमान कम तादाद में या यूँ कहिये कि नाक़ाबिल लिहाज़ अल्पसंख्यक में थे। वह अमली तौर पर उन अधिकारों की हिफ़ाज़त की स्थिति में नहीं थे, लेकिन इस्लाम उन अधिकारों के ध्वज वाहक की हैसियत से सामने आया। इस वजह से यह समझना मुश्किल न था कि अगर उसे क़ूव्वत और सत्ता हासिल हो तो वह इन अधिकारों की हिफ़ाज़त करेगा और समाज को उनके सम्मान का पाबन्द बनाएगा। चुनांचे मदीने में इस्लामी हुकूमत के क़ियाम के बाद हर हक़दार को उसका हक़ दिया गया और उसके साथ नेक सुलूक़ किया गया।

इस का मतलब यह है कि मुसलमान जहाँ कहीं भी हों, चाहे वह अल्पसंख्यक हों या बहुसंख्यक, ताक़तवर हों या बे क़ूव्वत, वह इन्सानी अधिकारों के रक्षक होंगे और किसी को हक़

मारने की इजाज़त न देंगे। जो भी फ़र्द या गिरोह किसी का हक़ मार ले उसके ख़िलाफ़ आवाज़ बुलन्द करेंगे और हक़दार को उसका हक़ दिलाने की कोशिश करेंगे।

अख़लाक़ी तालीमात (नैतिक शिक्षायें)

अब इस विषय पर नैतिक दृष्टिकोण से ग़ौर कीजिये। एक इन्सान के दूसरे इन्सानों के साथ किस तरह के सम्बंध हों, उसका सम्बंध नैतिकता और क़ानून दोनों से है लेकिन इस मामले में क़ानून से ज़्यादा नैतिकता और अख़लाक़ की अहमियत है। इस्लाम ने जिन नैतिकताओं की शिक्षा दी है उनसे आसानी से समझा जा सकता है कि मुसलमान का ग़ैर मुस्लिम के साथ क्या रवइया होना चाहिये? इस्लाम अपने मानने वालों को नैतिक मूल्यों का पाबन्द देखना चाहता है। उसके नज़दीक ईमान वालों को संयमी और सच्चे इन्सानों के साथ होना चाहिये।

> ''ऐ ईमान वालो अल्लाह से डरते रहो और सच्चों के साथ हो जाओ।'' (अल तौबाः ११९)
>
> उनकी ज़बान खुले तो हक़ व इन्साफ़ के लिये खुले। इन्साफ़ के मामले में वह अपने और ग़ैर का फ़र्क़ न करें।
>
> ''बोलो तो इन्साफ़ की बात बोलो चाहे उसकी चोट तुम्हारे किसी रिश्तेदार ही पर क्यों न पडती हो।''
>
> (अल अनआमः१५३)

यहूद अपने मामलात के फ़ैसले के लिये कभी इस ख्याल से रसूलुल्लाह सल्ल० की ख़िदमत में हाज़िर होते कि आप के फ़ैसले में क़ानून तोरैत के मुक़ाबले में आसानी और सहूलत हो तो क़ुबूल

कर लिया जाए वरना रद्द कर दिया जाऐ। हुक्म हुआ कि जब भी आप फ़ैसला करें न्याय व इन्साफ़ का दामन छूटने ना पाए।

> उनके मामलात में फ़ैसला करो तो न्याय के साथ फ़ैसला करो। अल्लाह इन्साफ़ करने वालों को पसन्द करता है। (अल माएदाः ४२)

उसने दुश्मनों के साथ भी इन्साफ़ का रास्ता इखितेयार करने की सख्त हिदायत की हैः

> ऐ ईमान वालो! खड़े हो जाओ अल्लाह के वास्ते इन्साफ़ के गवाह बन कर और किसी क़ौम की दुशमनी तुम्हें इस बात पर न आमादा करे कि तुम इन्साफ़ न करो। इन्साफ़ करो यह तक़वा से ज़्यादा क़रीब बात है और अल्लाह से डरते रहो। बेशक अल्लाह जो कुछ तुम करते हो उससे बा खबर है। (अल माएदाः ८)

वह कहता है कि आदमी बग़ैर इल्म व तहक़ीक के ज़बान न खोले।

> जिस चीज़ का तुम्हें इल्म नहीं है उसके पीछे न पड़ो। याद रखो कि कान, आँख और दिल उनमें से हर एक के बारे में सवाल होगा। (बनी इसराइलः ३६)

> वह अल्लाह के नेक बन्दों के किरदार की तारीफ़ करता है कि वह पाकबाज़ होते हैं, उनका चरित्र ज़िना और व्यभिचार से दाग़दार नहीं होता। वह अपनी जिन्सी ख्वाहिशात (कामेच्छा) की तसकीन के लिये सिर्फ जायज़ और हलाल तरीक़े इख़्तियार करते हैं। जो लोग उसके लिये नाजायज़ रास्ते तलाश करते फिरते हैं वह

सीमाओं से नावाक़िफ़, गुमराह और ग़लत कार हैं।

(अल मोमिनूनः ५-७)

वह बेहयाई और गन्दे कामों के क़रीब न फटकने और उनसे दूर रहने की ताकीद करता है।

और बेहयाई के कामों के चाहे वह खुले हों या पीछे करीब न जाओ। (अल अनआमः १५१)

उसका हुक्म है कि अहले ईमान जिस किसी से अहद व पैमान (प्रतिज्ञा) करें उसकी पाबन्दी करें।

ऐ ईमान वालों! अहद व पैमान को पूरा करो।

(अल माएदाः १)

वह उनकी एक खूबी यह बयान करता हैः

यह वह लोग हैं जो अपनी अमानतों और अपने अहद व पैमान की हिफ़ाज़त करते हैं और जो अपनी गवाहियों पर क़ायम रहते हैं। (अल मआरिजः३२,३३)

वह कहता है कि दूसरों का हक़ मारना बहुत बडा गुनाह है। यह तबाही का रास्ता है जो उस पर चलता है अपनी तबाही का सामान करता हैः

तबाही है नाप तौल में कमी करने वालों के लिये जो लोगों से नाप कर लेते हैं तो पूरा पूरा लेते हैं और जब उन्हें नाप कर या वज़न करके देते हैं तो घटा कर देते हैं। (अल मुतफ़्फ़िफ़ीनः १-३)

अल्लाह के जो बन्दे इस हक़ीक़त से वाक़िफ़ हों कि इन्सानों के साथ किसी भी क़िस्म के ग़लत रवइया का अल्लाह को जवाब देना होगा, उनसे किसी के हक़ मार देने की उम्मीद नहीं की

जा सकती। उनके मामलात साफ सुथरे और ज़ुल्म से पाक होंगे।

सूरह अलफ़ुरक़ान के आख़िर में ईमान वालों की ख़ूबियों का ज़िक्र है। उनमें से बाज़ यह हैं कि वह घमन्ड का प्रदर्शन नहीं करते, बल्कि नम्रता का तरीका इख़्तियार करते हैं। वह जाहिलों के मुँह नहीं लगते। जाहिल उनसे उलझते हैं तो सलाम करके गुज़र जाते हैं। (आयतः ६३)

वह कंजूसी और फ़िज़ूल खर्ची से बचते और दरम्यानी राह इख़्तियार करते हैं माल को सही जगह और ज़रूरत के मुताबिक़ खर्च करते हैं। (आयतः ६७)

वह इन्सानी जान का एहतराम करते हैं और नाहक़ किसी को क़त्ल नहीं करते और बदकारी और दुराचार से बचते हैं। (आयतः ६८)

वही झूठी गवाही नहीं देते और झूठे मामलात से दूर रहते हैं वह बेकार की बातों से शरीफ़ाना तौर से गुज़र जाते हैं। (आयतः ७३)

सूरह शूरा में फरमाया कि वह बड़े-बड़े गुनाहों और गन्दे कामों से परहेज़ करते हैं और कोई उन्हें गुस्सा और तैश में लाए तो उसे माफ़ कर देते हैं। वह किसी से बदला भी लेते हैं तो हद से आगे नहीं बढते। (३७-४०)

उनकी पहचान यह है कि वह समाज में अधर्म, बेदीनी, खुदा बेज़ारी, अश्लीलता और नग्नता, बद अखलाक़ी, झूठ और मक्र व फरेब नहीं फेलाते, उन्हें अच्छाई का हुक्म देने और बुराई से रोकने का हुक्म दिया गया है (आले इमरानः ११०) वह नेकी, तक़वा और अख़लाक़ की फ़िज़ा आम करते हैं।

यह इस्लाम की नैतिक शिक्षाओं की एक झलक है। जिस फ़र्द या गिरोह की इस नैतिक फ़ज़ा में परवरिश हो और जो इन नैतिकताओं की तरबियत पाए उसके बारे में आसानी से तसव्वुर किया जा सकता है कि उसका दूसरों के साथ किया रवइया होगा और वह उनके साथ किस तरह का बर्ताव करेगा?

इन नैतिकताओं का ताल्लुक मुसलमानों से भी है और ग़ैर मुस्लिमों से भी। कहीं यह नहीं कहा गया है कि सिर्फ मुसलमान ही आपस में उनके पाबन्द रहेंगे और ग़ैर मुस्लिमों के साथ उनका रवइया दूसरा होगा।

यहाँ एक बात का स्पष्टीकरण मुनासिब मालूम होता है। वह यह कि बहुत सी नैतिक शिक्षाओं के सम्बंधित मुसलमान या इस्लामी समाज है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि ये शिक्षायें सिर्फ मुसलमानों के साथ ख़ास हैं इसलिये कि वह इस्लाम की शिक्षा और उसकी रूह के लिहाज़ से बिल्कुल आम हैं। उनकी पाबन्दी मुस्लिम और ग़ैर मुस्लिम हर एक के साथ होगी। उसे दो एक मिसालों से समझा जा सकता है। बुखारी में हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ि० की रिवायत है कि नबी सल्ल० ने इरशाद फरमायाः

> मुसलमान वह है जिसके हाथ और ज़बान से उसका पड़ौसी सुरक्षित हो। (मिशकात)

यानी वास्तविक अर्थों में मुसलमान वह है जिसके हाथ और ज़बान से मुसलमान सलामती में रहें। यहाँ अलमुस्लिमून मुज़क्कर का सीग़ा है, लेकिन इसी के ज़ेल में मुसलमान औरतें भी आ जाती हैं। यही हुक्म ज़िम्मी (वह ग़ैर मुस्लिम जो इस्लामी राज्य का नागरिक हो) का भी है।

चुनांचे एक रिवायत में अल मुस्लिमून की जगह अलन्नास का लफ्ज़ आया है जो हर एक के लिये आम है।

एक और हदीस में मोमिन की तारीफ इन अल्फ़ाज़ में आई है।

''मोमिन वह हो जिससे लोगों की जान व माल सुरक्षित हों''। (मिशकात)

यानी सच्चा मुसलमान और कामिल मोमिन वह है कि लोग उसे अपनी जान व माल का रक्षक समझें और इसके सिलसिले में उन्हें यह इत्मिनान हो कि वह उसकी तरफ़ से हर तरह सुरक्षित और महफ़ूज़ हैं और उन्हें उससे किसी नुकसान के पहुँचने का खतरा नहीं है। यह रवइया मुस्लिम और ग़ैर मुस्लिम दोनो ही के साथ होगा।

इन हदीसों में बताया गया है कि खुद 'मुस्लिम' और 'मोमिन' के अल्फ़ाज़ इस हक़ीक़त की तरफ इशारा कर रहे हैं।

एक हदीस में अंधे व्यक्ति को थोड़ा सा रास्ता बता देने की की श्रेष्ठता इन शब्दों में बयान हुई है। जो शख्स किसी अन्धे की चालीस क़दम रहनुमाई करे उसके लिये जन्नत वाजिब होगी

इसमे ''आमा'' (अन्धा) का लफ़्ज़ आम है इससे जिस तरह एक अन्धा मुस्लिम मुराद है इसी तरह अन्धा ग़ैर मुस्लिम भी मुराद हो सकता है।

दावते दीन के तक़ाज़े

अब आइये दावत के नुक़ते नज़र से इस मसले पर ग़ौर किया जाए।

मुसलमान दर हक़ीक़त दाओ इलल्लाह यानी अल्लाह की तरफ़ बुलाने वाला है, यह उसकी अहम धार्मिक ज़िम्मेदारी है ग़ैर मुस्लिमों से ताल्लुक़ात पर ग़ौर करते वक्त इस पहलू को नज़र अन्दाज़ नहीं किया जा सकता। उसका पहला तक़ाज़ा यह है कि अल्लाह के उन बन्दों से दाओ (आमन्त्रक) का सम्बंध हमदर्दी और शुभ चिंतन का हो, जिन तक अल्लाह का दीन उसे पहुँचाना है। अल्लाह तआला के पैग़म्बरों का अपनी सम्बोधित क़ौम के साथ जिस तरह का सम्बंध होता था वह हमारे लिये बेहतरीन नमूना है। हज़रत नूह अलैहसलाम फ़रमाते हैं।

''मैं तुम्हे अपने रब का पैग़ाम पहुँचा रहा हूँ और तुम्हारे साथ ख़ैर ख़्वाही कर रहा हूँ।''

(अल ऐराफ़ः ६२)

इसी खैर ख्वाही (शुभचिंतन) का इज़हार हज़रत हूद इन अल्फाज़ में करते हैंः

''मैं अपने रब के पैग़ामात तुम तक पहुँचा रहा हूँ और मैं ख़ैर ख़्वाह और अमानतदार हूँ''। (अल ऐराफ़ः६८)

यही हाल अल्लाह के तमाम पैग़म्बरों का होता है। नसीहत के अन्दर इख़लास, मुहब्बत और ख़ैर ख़्वाही का तसव्वुर है। यह उसी वक़्त सम्भव है जबकि आदमी दिल से उन लोगों की भलाई का इच्छुक हो जिनको वह दीन की दावत दे रहा है और ख़ुलूस के साथ उनके सामने दीन और उसके तक़ाज़े स्पष्ट करे, तौहीद (एकेश्वरवाद) का स्पष्ट तसव्वुर पेश करे, रिसालत और आख़िरी रसूल सल्ल० के हक़ में दलीलें पेश करे और आख़िरत की कामयाबी और नाकामी को खोल कर बयान करे। अल्लाह के

रसूलों के अन्दर सम्बोधित क़ौम की इसलाह व सुधार का तीव्र जज़्बा होता है और वह पूरे ख़ुलूस के साथ उनकी फ़िक्री व अमली इसलाह चाहते हैं। हज़रत शुएब अलै० किस क़द्र मुहब्बत और दर्दमन्दी के साथ फरमाते हैंः

> ''और मैं नहीं चाहता कि जिन बातों से मैं तुम्हें मना करता हूँ बाद में वह खुद करने लगूँ। मै तो जहाँ तक मुझसे हो सके बस इसलाह (सुधार) चाहता हूँ। क़ूव्वत तो मुझे अल्लाह से ही मिलेगी। उसी पर मैं भरोसा करता हूँ और उसी की तरफ मैं पलटता हूँ''।
>
> (हूदः ८८)

इस मामले में दिल की वह कैफ़ियत होनी चाहिये जो अल्लाह के रसूलों की हुआ करती थी। अल्लाह के आख़िरी रसूल सल्ल० की इस कैफ़ियत की तसवीरकशी (चित्रण) इन अल्फ़ाज में की गयी है।

> ''शायद आप उनके पीछे अपनी जान को हलाक़ कर डालेंगे इस अफसोस और ग़म में अगर वह इस कलाम (क़ुरआन) का न मानें।'' (अल कहफ़ः ६)

हुक़्म है कि दावत का काम हिक़मत और अच्छी नसीहत और बेहतरीन मुबाहसे के ज़रिये अन्जाम दिया जाए और सब्र के साथ जारी रखा जाए। जोश और उत्तेजना से बचा जाए और इस राह की तकलीफ़ों को बरदाश्त किया जाए और माफ़ी व दर गुज़र से काम लिया जाए। (अल नहलः १२५-१२८)

इसका मतलब यह है कि अल्लाह तआला के पैग़म्बर जिस क़ौम में दावत का काम अन्जाम देते हैं, उस क़ौम से उनका सम्बंध

हमदर्दी व ख़ैर ख़्वाही, ख़ुलूस व मोहब्बत और माफ़ी व दर गुज़र का होता है और वह उनके फ़िक्र व अमल की इसलाह चाहते हैं। उससे ग़ैर मुस्लिम समाज में मुस्लिम ग़ैर मुस्लिम सम्बंधों की नौइयत भी स्पष्ट होती है। दावत एक नाज़ुक काम है जो फ़र्द या गिरोह उसके लिये उठे उसे अपनी क़ौम के साथ वह रवइया अपनाना होगा जो अल्लाह के पैग़म्बरों ने अपनाया था और उस किरदार का सुबूत देना होगा जो उन्होंने दिया था।

असहयोग किस से?

कुछ लोग कहते हैं कि क़ुरआन मजीद में कुफ़्फ़ार व मुश्रिकीन से सहयोग न करने और उनको दोस्त न बनाने का हुक़्म है (आले इमरानः १४४) और उन्हें राज़दार बनाने से मना किया गया है (आल इमरानः११८) फिर उनसे सम्बन्ध स्थापित करने की क्या बुनियाद होगी?

इस सिलसिले में यह बात नहीं भूलनी चाहिये कि इन निर्देशों का सम्बंध जिहाद से है। जंग की हालत और अमन व शान्ति की हालत के निर्देश बड़ी हद तक अलग-अलग होते हैं। जिस क़ौम से जंग हो उससे सम्बंध न रखने और दूर रहने का ज़रुर हुक्म दिया जाएगा और ख़ुफिया तौर पर उससे सम्बंध रखने पर डांट-डपट की जाएगी। इस पर आदमी दन्ड का भागीदार भी हो सकता है। लेकिन जंग की जगह सुलह हो और दो क़ौमें अमन व शान्ति के मुआहिदे की पाबन्द हों तो उसका हुक्म मुख़तलिफ़ होगा। जिस क़ौम से जंग न हो, जिसने इस्लाम और मुसलमानों के साथ ना इन्साफ़ी और दुश्मनी का रवइया न इख्तियार किया हो उसके बारे में साफ़ अल्फाज़ में कहा गया है कि

उसके साथ भलाई और इन्साफ़ और अच्छे बर्ताव में कोई चीज़ रोड़ा नहीं है।

> अल्लाह तआला तुम को मना नहीं करता कि जिन लोगों ने तुमसे दीन के मामले में जंग नहीं की और तुम्हें तुम्हारे घरों से नही निकाला कि तुम उन के साथ अच्छा सुलूक और इन्साफ़ करो। बेशक अल्लाह तआला इन्साफ़ करने वालों को पसन्द करता है।
>
> (अल मुमतहनाः ८)

इसके फ़ौरन बाद यह भी बता दिया कि वह कौन लोग हैं जिनसे दिली लगाव और क़रीबी सर्म्पक रखना सही नहीं है।

> अल्लाह तआला तुम्हें (इस बात से) मना करता है कि जिन लोगों ने दीन के मामले में तुम से जंग की और तुम्हें तुम्हारे घरों से निकाला और तुम्हारे निकालने में दुशमनों की मदद की कि तुम उनसे दोस्ती करो और जो कोई उनसे दोस्ती करे तो ऐसे ही लोग ज़ालिम हैं।
>
> (अल मुमतहनाः ९)

इससे मालूम हुआ कि इस्लाम ने उन लोगों के साथ सहयोग न करने का हुक़्म दिया है जो मुसलमानों से जंग कर रहे हैं। जिन्होंने मुसलमानों के ख़िलाफ़ हर तरह की ज़्यादती की और उनके दुशमनों की मदद की, लेकिन जो क़ौम मुसलमानों से जंग न कर रही हो और मुसलमानों से बैर और दुशमनी न रखती हो और जिन से मुसलमानों को किसी तरह की तकलीफ़ न पहुँची हो, उसके साथ सहयोग हमदर्दी और शुभ-चिंतन का रवइया इख़्तियार करने में कोई चीज़ रोड़ा नहीं है।

हदीसों से मालूम होता है कि ग़ैर मुस्लिम की दावतें क़ुबूल की जा सकती हैं, उनके साथ सलाम और दुआ का स्पष्टीकरण मौजूद है। रसूलुल्लाह सल्ल० ने ग़ैर मुस्लिम की बीमारी में ख़ैरियत ली है इस्लामी विधानों ने उनकी मौत पर घर जाकर शोक प्रकट करने को सही क़रार दिया है, विशेष परिस्थितियों में उनके कफ़न-दफ़न में भी शिरकत हो सकती है। इस तरह के मसाएल में विधानों के दरम्यान मतभेद भी हैं जिन से उन बातों की गुन्जाइश बहरहाल निकलती है और आदमी हालात के लिहाज़ से किसी पहलू को इख्तियार करे तो उसे ग़लत नहीं कहा जा सकता।

नाफ़रमानी जायज़ नहीं

यहाँ इस बुनियादी हक़ीक़त को नहीं भूलना चाहिये कि इस्लाम अक़ीदये तौहीद पर क़ायम है। यह अक़ीदा और विश्वास बेदीनी, ख़ुदा बेज़ारी और हर तरह के शिर्क से पाक है। रिसालत और आख़िरत पर ईमान इस्लामी अक़ीदे का लाज़िमी हिस्सा है, इसलिये मुसलमान जहाँ कहीं भी हो उसे अपने अक़ीदे की हिफ़ाज़त करना और उस पर क़ायम रहना लाज़िम है। वह इससे किसी हाल में न तो बेताल्लुक़ हो सकता हैं और न इस मामले में किसी प्रकार का समझौता कर सकता है। आज के हालात में ग़ैर इस्लामी विचार मुसलमानों को हर तरफ से प्रभावित कर रहे हैं, इसके साथ जहाँ कहीं वह अक़लियत (Minority) में हैं उन पर अकसरियत (Majority) का वैचारिक, सांस्कृतिक और सियासी दबाव भी स्थायी रुप से बना रहता है। इसमें दीने इस्लाम पर मज़बूती और जमाव बहुत मुश्किल है लेकिन उन्हें मज़बूती और जमाव का हर हाल में सुबूत देना होगा, वह छोटी से छोटी

अक़लियत में हों तो भी उन्हें इस बात की कोशिश करनी होगी कि उनके अक़ीदों पर चोट न हो और इस्लाम के बुनियादी धारणाओं पर चोट न आने पाए। वह अपने फ़िक्र व नज़र और सीरत व किरदार से मोमिन व मुस्लिम और इस्लाम के ध्वजवाहक होने का सुबूत पेश करते रहें और किसी भी हाल में उससे ज़र्रा बराबर भी न हटें।

----oo----

ग़ैर इस्लामी हुकूमत में मतलूबा किरदार (वांछित चरित्र)

इस्लामी शिक्षाओं से स्पष्ट है और तारीख़ गवाही देती है कि इस्लाम अपने मानने वालों में बेमिसाल दीनी व अख़लाक़ी किरदार पैदा करता है। वह उन्हें अल्लाह ताअला से क़रीब करता है, उसके मुख़्लिस व वफ़ादार बन्दे बनाता और उनके किरदार (चरित्र) को बुलन्दी और पाकीज़गी अता करता है। जिस व्यक्ति का इस्लाम पर ईमान व यक़ीन हो और जो उसकी शिक्षाओं का पाबन्द हो उसके लिये फ़ितना व फ़साद की राह पर चलना बल्कि क़दम उठाना मुश्किल होगा। उससे नेकी, संयम, कल्याण और भलाई ही की उम्मीद की जा सकती है। यही खूबी इस दुनिया में एक मोमिन की असल पूंजी है। इसी से वह हालात का मुक़ाबला करता और उन्हें सही दिशा देने की कोशिश करता है। इसी से उसने बार-बार दुशमनों के दिल जीते हैं और उन पर विजय हासिल की है। हालात अच्छे हो या बुरे इस्लाम चाहता है कि इन्सान का अल्लाह से सम्बंध मज़बूत हो और वह ऊँची नैतिकता का सुबूत दे। यहाँ ग़ैर इस्लामी माहौल के पसे मन्ज़र में उसकी थोड़ी सी वज़ाहत की जा रही है।

रूजू इलल्लाह (अल्लाह की तरफ़ पलटना)

इस दुनिया में ईमान वालों पर सख्त से सख्त आज़माइश आ सकती हैं। उन्हें मुश्किल और कठोर हालात से गुज़रना पड़ सकता है। इसमें बडी हिकमतें हैं। कभी यह आज़माइश यह देखने के लिये भी आती हैं कि ईमान वाले अपने ईमान के दावे में सच्चे

हैं या नहीं? इनमें कौन मुख़्लिस (निष्ठावान) और कौन मुख़्लिस नही है। कौन सच्चा मोमिन है और कौन मुनाफ़िक़ और पाखंडी?

इस्लामी तारीख़ के शुरूआती दौर में मक्का के मुसलमान बेहद सख़्त और भयानक हालात से गुज़र रहे थे। आज़माइशें थीं कि बारिश की तरह बरस रही थीं। क़ुरान मजीद ने इन हालात में कहाः

> क्या लोगों ने ख्याल कर रखा है कि वह यह कहने पर कि हम ईमान ले आऐ, छोड़ दिये जाऐगें और उनकी आज़माइश न होगी, जब कि हमने (ईमान के दावे पर) उनसे पहले के लोगों को आज़माया है। अल्लाह तो ज़रूर उन लोगों को देखेगा जो सच्चे हैं और ज़रूर उन लोगों को भी देखेगा जो झूठे हैं।
>
> (अल अनकबूतः २,३)

इसी सिलसिले में आगे चल कर फ़रमायाः

> और अल्लाह ज़रूर मालूम करके रहेगा उन लोगों को जो (सच्चे दिल से) ईमान लाए और उन लोगों को भी अल्लाह ज़रूर मालूम करके रहेगा जो मुनाफ़िक़ और पाखंडी हैं। (अल अनकबूतः ११)

ईमान वालों की पहचान यह बताई गयी है कि वह हर तरह की आज़माइशों में जमे रहते हैं। इरशाद बारी हैः

> और ज़रूर हम तुम्हें आज़माऐंगे किसी क़द्र ख़ौफ़, भूख, जान व माल, और फलों के नुकसान से (इस पर) सब्र करने वालो को ख़ुश ख़बरी दे दो।
>
> (अल बकराः १५५)

इसके बाद कहा गया कि सख़्त हालात और मुश्किलात में वह अल्लाह तआला की तरफ़ रूजू करते हैं, इस वजह से दुनिया और आख़िरत में वह उसकी रहमत और दया के पात्र क़रार पाते हैं। उनकी दिली कैफ़ियत इन अल्फ़ाज़ में बयान हुई है।

> (सब्र करने वाले वह हैं) कि जब उन्हें कोई तकलीफ़ पहुँचती है तो कहते हैं कि बेशक हम अल्लाह के हैं और हम उसी तरफ़ लौटने वाले हैं। उनके लिये उनके रब की तरफ़ से रहमतें हैं और यही हिदायत पाने वाले हैं। (अल बक़रा १५६,१५७)

मुसीबत में अल्लाह की तरफ पलटना इन्सान की फ़ितरत में दाख़िल है। मोमिन को ज़िन्दा व सेहतमन्द फ़ितरत मिलती है। जब भी उस पर कोई नाज़ुक समय आता है और वह मुश्किलात से घिरा होता है तो फ़ौरन उसे अल्लाह की तरफ़ पलटना नसीब होता हैं और वह उससे मदद तलब करता है। मुसीबत में भी अगर कोई अल्लाह की तरफ़ न पलटे तो इसका मतलब यह हैं कि उसकी फ़ितरत बेहिसी का शिकार है। वह अपनी कोशिशों पर भरोसा करेगा, अल्लाह की तरफ़ नहीं पलटेगा। हालांकि अल्लाह की मदद के बग़ैर उसकी कोई कोशिश कारगर नहीं हो सकती।

हालात की संगीनी और सख्ती और हमारी कमज़ोरी और बेबसी इस बात का सख़्त तक़ाज़ा करती है कि अल्लाह तआला की तरफ़ पलटा जाए। उसके ज़िक्र से दिल को आबाद रखा जाए, उससे फ़रियाद की जाए उससे दुआऐं की जाऐं और उससे मदद तलब की जाए। यही एक मोमिन का चरित्र है। इससे उम्मीद है कि हमारी तदबीरें कारगर होंगी,

अल्लाह तआला की मदद और हिमायत हासिल होगी और मुश्किलात दूर होगीं। यह हक़ीक़त कभी भी भूलना नहीं चाहिये कि कामयाबी और नाकामी सब कुछ अल्लाह के हाथ में है।

> अगर अल्लाह तुम्हारी मदद करे तो कोई तुम पर ग़ालिब न आ सकेगा और अगर वह तुम्हें छोड़ दे तो उसके बाद कौन है जो तुम्हारी मदद करे? और अल्लाह ही ईमान वालों को भरोसा करना चाहिये।
>
> (आले इमरानः१६०)

नमाज़ का क़ियाम

नमाज़ दीन का स्तंभ है। उसकी हर हाल में और हर जगह पाबन्दी होनी चाहिये। नाज़ुक हालात में यह मोमिन की क़ूव्वत का सबसे बड़ा ज़रिया है। क़ुरआन मजीद ने हिदायत की है कि मुश्किलात में सब्र और नमाज़ से मदद हासिल की जाए। इरशाद है:

> और मदद तलब करो सब्र और नमाज़ से। बेशक वह भारी है मगर इन लोगों पर नहीं जिन के दिलों में खौफ़ है। (अल बक़राः ४५)

फ़िरऔन ने बनी इसराइल पर ज़ुल्म के पहाड़ तोड रखे थे, उनकी नस्ल ख़त्म की जा रही थी, वह ग़ुलामी और बेबसी की ज़न्जीरों में जकड़े हुए थे, उनकी औरतों की बेहुरमती और इज़्ज़त लूटी जा रही थी, वह एक नहीं सैकड़ों ज़्यादतियों के शिकार और इन्सानी अधिकारों से सरासर वंचित थे। इन सख़्त तरीन हालात में हज़रत मूसा ने उन्हें दीन पर मज़बूती से जमे रहने और नमाज़

के ज़रिये मदद मांगने का हुक्म दिया।

मदद तलब करो सब्र और नमाज़ के ज़रिये बेशक अल्लाह सब्र करने वालों के साथ है। (अल बक़राः१५३)

एक और मौक़े पर हिदायत फ़रमाई।

मदद तलब करो अल्लाह से और सब्र करो।

(अल आराफ़ः १२८)

ऊपर की आयत से स्पष्ट है कि यह नमाज़ और सब्र के ज़रिये मदद मांगने का हुक़्म था। मतलब यह कि इन हालात में सब्र से काम लो। बेसब्री का प्रर्दशन न करो। ना उम्मीद और खौफ़ज़दा होना मायूस और बेहिम्मत। दीन पर पूरी क़ूव्वत से जमे रहो, इस मुश्किल हालात में नमाज़ से मदद मिल सकती है, उससे मदद हासिल करो।

नमाज़ क़ायम करने का मतलब यह है कि नमाज़ के ज़ाहिरी शर्तें और तक़ाज़े भी पूरे किये जाऐं और उसकी रूह भी अपने अन्दर पैदा करने की कोशिश की जाए। नमाज़ इस तरह अदा की जाए जिस तरह अदा करने का हुक़्म है। वक़्त की पाबन्दी हो, फ़र्ज़ के साथ सुन्नत व नफ़्ल का भी एहतेमाम हो। नमाज़ में ख़ुशू व ख़ूज़ू (विनम्रता और एकाग्रता) हो, अल्लाह तआला के दरबार में हाज़िरी का एहसास और इनाबत व इख़लास हो, बल्कि एहसान की कैफ़ियत पैदा करने की कोशिश की जाए। इस तरह नमाज़ के ज़ाहिरी शर्तें और अन्दरूनी कैफ़ियतें जब जमा हो जाती हैं तो उसके प्रभाव भी दिखाई देने लगते हैं।

मुसलमानों की हर बस्ती में जमाअत से नमाज़ का इन्तेज़ाम होना चाहिये। इसके लिये मस्जिदें बनायी जायें उन्हें

पाक-साफ़ रखा जाए। उनका बेहतर प्रबन्धन हो। यह और इस तरह की ज़रूरी कोशिशों से नमाज़ क़ायम करने का तसव्वुर पूरा होता है।

नमाज़ के ज़रिये अल्लाह तआला से ताल्लुक़ मज़बूत होता है और बाजमाअत नमाज़ से एक ऐसी उम्मत का ख़्याल उभरता है, जिस के दरम्यान समानता और बराबरी है, छोटे और बड़े और अमीर और ग़रीब का फ़र्क़ नहीं है उसकी सफों में एकता और इत्तेफ़ाक़ है, वह बिखराव से सुरक्षित है और उसका हर फ़र्द दूसरे फ़र्द का हमदर्द और साथी है। उम्मत के अन्दर यह जज़्बा सही अर्थों में पैदा हो जाए तो उसका कोई भी फ़र्द कठिनाइयों और मुसीबतों में खुद को बेयारो मददगार नहीं महसूस करेगा बल्कि अपने आप को हमदर्दों के दरम्यान पाएगा। इस तरह उम्मत बड़ी से बड़ी मुश्किल पर क़ाबू पा सकती है।

गुस्सा और उत्तेजना से परहेज़

इन्सान को ठन्ढ़े और शान्त स्वभाव का होना चाहिये। भावनाओं से ग्रसित हो कर कोई क़दम उठाना सख्त जिहालत है। उसकी किसी भी होशमन्द और समझदार व्यक्ति से उम्मीद नहीं की जा सकती है। कभी-कभी जानबूझकर गुस्सा दिलाने और उत्तेजित करने की कोशिश होती है। इन्सान की कामयाबी इसमें है कि वह उस कोशिश को नाकाम कर दे। उत्तेजना पैदा करना इसी लिये होता है कि आदमी भड़क उठे और बेक़ाबू हो जाए और वह क़दम उठा ले जो ठंडे दिल व दिमाग़ वाला इन्सान कभी पसन्द नही करेगा। इससे उत्तेजना पैदा करने वाला फ़ायदा उठाता है

और उत्तेजित होने वाला नुकसान में रहता है।

ईमान वालों की एक ख़ूबी यह बयान हुई है कि वह भड़कावे में नहीं आते, ग़ुस्सा व ग़ज़ब का प्रर्दशन नहीं करते किसी की अनुचित हरकत और ग़लत रवइये पर उन्हें ग़ुस्सा आता भी है तो माफ़ी और दर गुज़र से काम लेते हैं।

जब उन्हें ग़ुस्सा आता है तो वह माफ़ कर देते हैं।

(अश शूरा ३७)

जो शख्स ग़ुस्से पर क़ाबू रखे, जिस वजह से ग़ुस्सा आया है उसे सहन करे और ताक़त के बावजूद कोई जवाबी कारवाई न करे तो रसूलुल्लाह सल्ल० का इरशाद है कि अल्लाह ताअला उसे सबके सामने जन्नत का पात्र ठहराएगा और वहाँ की राहत और सुकून के लिये उसकी पसन्दीदा हूरें उसे अता फ़रमाएगा। हज़रत माज़ बिन अनस अलज़हनी रज़ि० की रिवायत है कि आप सल्ल० ने इरशाद फ़रमायाः

> जो शख्स ग़ुस्से को उस पर अमल करने की ताक़त के बावजूद पी जाए अल्लाह तआला उसे मख़लूक़ के सामने बुलाएगा और उसे (अपनी नेअमतों से नवाज़ेगा) यहाँ तक कि उसे इख़ितयार देगा कि वह जिस हूर को चाहे पसन्द कर ले। (मिशकात)

रसूलुल्लाह सल्ल० से एक सहाबी रज़ि० ने नसीहत की दरख्वास्त की (ग़ालिबन उनमें यह कमज़ोरी थी कि वह जल्द ग़ुस्सा में आ जाया करते थे) उनके मुनासिब हाल आपने फ़रमाया ग़ुस्सा मत किया करो उन्होंने बार-बार यही दरख़्वास्त इस उम्मीद

पर की कि शायद आप ज़्यादा और कुछ नसीहत फ़रमाऐंगे। लेकिन आप सल्ल० ने हर बार यही फ़रमाया कि ग़ुस्सा मत किया करो। (बुखारी)

आदमी की अज़मत और महानता उसके शारीरिक लिहाज़ से तन्दरुस्त और ताक़तवर होने से ज़्यादा नैतिक लिहाज़ से मज़बूत होने में है। वह उत्तेजनापूर्ण माहौल में अपने जज़्बात को जितना क़ाबू में रखेगा उतना ही अपनी महानता का सुबूत देगा। रसूल अल्लाह सल्ल० का इरशाद हैः

> ताक़तवर वह नहीं है जो किसी को पछाड़ दे बल्कि ताक़तवर वह है जो ग़ुस्सा के वक्त अपने आप को क़ाबू में रखे। (बुखारी)

ग़ुस्से का पीना कड़वा घूंट पीना है। यह आसानी से हलक़ के नीचे नहीं उतरता। लेकिन अल्लाह को यह घूंट सबसे ज़्यादा पसन्दीदा है। हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ि० की रिवायत है कि रसूल अल्लाह सल्ल० ने फ़रमायाः

> बन्दे ने कोई ऐसा घूंट नही पिया जिसकी अल्लाह के नज़दीक ग़ुस्सा के उस घूंट से ज़्यादा श्रेष्ठ हो जो वह उसकी ख़ुशी और प्रसन्नता के लिये पीता है।
>
> (मुसनद अहमद)

मतलब यह कि ग़ुस्सा का जो घूंट आदमी अल्लाह की खुशी के लिये पीता है वह उसके नज़दीक सबसे क़ीमती घूंट है। इससे ज़्यादा कोई घूंट उसे पसन्द नहीं है।

ग़ुस्से की हालत में आदमी अन्जाम से बेपरवाह होकर कुछ भी कर गुज़रना चाहता है। ख़ामोश रहना पसन्द नहीं करता। यह

सही रवइया नहीं है। अगर मामला हक़ (सत्य) और बातिल (असत्य) का हो तो सत्य की ख़ातिर ग़ुस्से में आना सही है। महज़ अपने ग़लत जज़्बे और मन को सन्तुष्टि के लिये ग़ुस्से का इज़हार ग़लत है। इससे हालात को ठीक करने में मदद नहीं मिलती बल्कि वह और ज़्यादा ख़राब हो सकते हैं, इससे बचना चाहिये।

माफ़ करना बहुत बड़ी नैतिक ख़ूबी है

माफ़ी व अनदेखी करना एक बहुत बड़ी नैतिक ख़ूबी है। इस्लाम अपने मानने वालों में यह ख़ूबी देखना चाहता है। क़ुरआन मजीद अल्लाह के नेक बन्दों के पाकीज़ा ख़ूबियों का ज़िक्र करता है तो उनमें इस ख़ूबी का ख़ास तौर से ज़िक्र होता है।

> वह ग़ुस्से को पी जाने वाले और लोगों की ज़्यादतियों को माफ़ करने वाले हैं और अल्लाह एहसान करने वालों को पसन्द करता है। (आले इमरानः १३४)

रसूलुल्लाह सल्ल० के इरशादात में माफ़ी व दर गुज़र की बड़ी नसीहत की गयी है और उसकी बहुत फ़ज़ीलत और श्रेष्ठता बयान हुई है। हज़रत उक़बा बिन आमिर रज़ि० की रिवायत है कि अल्लाह सल्ल० ने फरमायाः

> रिश्तेदारों से अच्छा सुलूक करो उससे जो तुमसे कटे, जो तुम्हें तुम्हारे हक़ से वंचित करे उसे उसका हक़ दो और जो तुम्हारे साथ ज़ुल्म करे उसे माफ़ कर दो।
>
> (मुसनद अहमद)

> एक शख़्स ने रसूलुल्लाह सल्ल० से अर्ज़ किया कि मेरे कुछ रिश्तेदार हैं मैं उनके साथ अच्छा सुलूक करता हूँ लेकिन वह मुझसे ताल्लुक़ तोड़ते हैं। मैं उनके साथ

भला सुलूक करता हूँ और वह मेरे साथ बुरा सुलूक करते हैं।

> मैं उनके साथ माफ़ी व अनदेखी और सहनशीलता का रवइया इख़्तियार करता हूँ और वह मेरे साथ जिहालत करते हैं। आपने फ़रमाया अगर बात वही है जो तुम बयान कर रहे हो तो गोया तुम उनके मुंह में गरम राख भर रहे हो और जब तक तुम्हारी यह रविश है अल्लाह का फ़रिश्ता तुम्हारा मददगार होगा। (मुस्लिम)

क़ुरआन मजीद ने बदतरीन दुश्मनों के साथ भी माफ़ी व दर गुज़र का रवइया इख्तियार करने की शिक्षा दी है। यहूद की दुशमनी और अदावत नुमायां थी। साज़िश करना उनके मिज़ाज का हिस्सा रहा है। वह हमेशा मुसलमानों के ख़िलाफ़ तरह तरह की साज़िशों में लगे रह। उनके सम्बंध में कहा गयाः

> आपको उनकी किसी न किसी बेईमानी की खबर होती ही रहती है अलबत्ता उनमें से कुछ एक उससे अपवाद है। तो आप उन्हें माफ़ करदें और दर गुज़र करें । बेशक अल्लाह एहसान करने वालो से मुहब्बत करता है। (अल माएदाः १३)

यहाँ ''अफ्व'' और ''सफ्ह़'' दो अल्फ़ाज़ इस्तेमाल हुए हैं। दोनो के मायने लगभग एक ही हैं। इसमें ग़लतकार को सज़ा न देना, ग़ुस्से और गज़ब का इज़हार न करना और लॉन-तॉन से परहेज़ करना जैसी खूबियां आती हैं। यह एक बड़ा नैतिक रवइया है लेकिन उससे ऊंचा चरित्र यह कि आदमी ज़्यादती करने वाले को दिल से माफ़ कर दे और उसके साथ इस तरह मामला करे जैसे उसने ज़्यादती न की हो। यह एहसान है। इस्लाम यही

जैसे उसने ज़्यादती न की हो। यह एहसान है। इस्लाम यही अख़लाक व किरदार (चरित्र और आचरण) चाहता है।

मुश्रिकीन के साथ भी उनकी तमाम ज़्यादतियों के बावजूद इसी माफ़ी व दर गुज़र का हुक्म दिया गया है। इरशाद है।

> रसूल का यह कथन कि ऐ रब! बेशक यह वह लोग हैं जो ईमान नही ला रहे हैं। (अल्लाह के इल्म में है) आप उनसे दर गुज़र कीजिये और कहिये कि तुम को सलाम है। यह जल्द जान लेगें। (अर्ज़ ज़ुख़रफ़ः ८८, ८९)

एक मौक़े पर फ़रमायाः

> बेशक क़ियामत ज़रूर आने वाली है पस आप उन्हें अच्छी तरह दर गुज़र फ़रमाऐं। (अल हिज्रः ८५)

बदला लेने की जगह माफ़ करना पसन्दीदा है

क़ुरआन मजीद ने जहाँ आदमी के इस क़ानूनी हक़ को तसलीम किया है कि वह ज़ुल्म व ज़्यादती का जवाब दे सकता है वहाँ उसे माफ़ी व दर गुज़र की भी दी है। उसने कहा कि मज़लूम को ज़ालिम से बदला लेने का हक़ ज़रूर है लेकिन उसके लिये फ़र्ज़ और अनिवार्य नहीं है वह अपने इस हक़ को इस्तेमाल न करे और सब्र व सहनशीलता और माफ़ी व दर गुज़र की रविश इख्तियार करे तो यह नतीजों के लिहाज़ से बेहतर होगा। यह उसकी नैतिक विजय होगी और यही मतलूब है। इरशाद हैः

> अगर बदला लो तो इस क़दर बदला लो कि तुम को तकलीफ़ पहुँचाई गयी है। लेकिन अगर सब्र करो तो यह सब्र करने वालों के हक़ में यक़ीनन बेहतर है।
>
> (अन नहलः १२६)

इसमें इस बात की वज़ाहत है कि बदला लेना ज़रूरी नहीं है लेकिन आदमी बदला लेना ही चाहे तो जितनी ज़्यादती हुई या जितना नुकसान पहुँचा है उसी के बराबर बदला ले सकता है। लेकिन बेहतर यह है कि आदमी सब्र से काम ले। सूरह शूरा में यह पूरी बात ज़्यादा वज़ाहत के साथ बयान हुई है।

> और बुराई का बदला उसी जैसी बुराई है लेकिन जो शख्स माफ़ करे और सुधार कर के तो उसका अज्र (प्रतिदान) अल्लाह के ज़िम्मे है। बेशक अल्लाह ज़ालिमों को पसन्द नहीं करता। जो शख्स अपने ऊपर ज़ुल्म होने के बाद बदला ले तो उस पर कोई इल्ज़ाम नहीं है। इल्ज़ाम तो सिर्फ उन लोगों पर आता है जो लोगों पर ज़ुल्म और ज़मीन में नाहक़ सरकशी करते हैं। उनके लिये दर्दनाक अज़ाब है। जो शख्स (ज़्यादती पर) सब्र करे और माफ़ करदे तो बेशक यह बड़ी हिम्मत के कामों में से है। (अश शूरा ४०-४३)

इस तरह इस्लाम ने इन्सानों को ज़ुल्म के बदला लेने का क़ानूनी हक़ भी दिया और उसके साथ माफ़ी से दर गुज़र और बुलन्द अखलाक़ी रवइया इख्तियार करने की रग़बत भी दिलाई। इससे यह बात निकलती है कि आदमी को बदले की कार्यवाही मजबूरी के हालात ही में करनी चाहिये जबकि उससे कोई बड़ा शख्स या क़ौमी फ़ायदा जुड़ा हो। वरना बेहतर यही है कि वह माफ़ी व अनदेखी से काम ले और माफ़ कर दे।

क़ुरआन मजीद ने इन आयात में माफ़ी व दर गुज़र के साथ इसलाह और सुधार करने का भी हुक़्म दिया है चुनाँचे आग़ाज़ कलाम ही में इरशाद हैः

पस जिसने माफ़ किया और इस्लाह की तो उसका अज्र (प्रतिदान) अल्लाह के ज़िम्मे है। बेशक वह ज़ालिमों को ना पसन्द करता है। (अश शूरा ४०)

हालात के सुधार के लिये ज़रूरी है कि सबसे पहले यह देखा जाऐ कि सम्बंधों में बिगाड़ क्यों आया और अपने उसूल पर क़ायम रहते हुए उसे ख़त्म करने की क्या तदबीर हो सकती है? नफ़रत और दुशमनी की जगह मुहब्बत का माहौल कैसे पैदा किया जा सकता है? उसके लिये गम्भीर कोशिश करनी होगी। इसलाहे हाल के लिये दुशमन को पहले माफ़ करना होगा और फिर सम्बंधों को बेहतर बनाने का उचित रास्ता निकालना होगा। इसके बाद ही कामयाबी की उम्मीद की जा सकती है।

माफ़ी व दर गुज़र की बलन्द मिसालें

माफ़ी व दरगुज़र की बड़ी मिसाल हज़रत यूसुफ़ की ज़िन्दगी में मिलती है। हज़रत यूसुफ़ के साथ उनके भाइयों ने नफ़रत व जलन की बिना पर वह रविश अपनाई, जिस की दुशमनों से भी मुश्किल ही से उम्मीद की जा सकती है, उन्हें वह तफ़रीह के बहाने ले गये और कुऐं में फेंक दिया। अल्लाह तआला ने उनकी हिफ़ाज़त फ़रमाई। वह कुऐं से निकाले गये और तरह-तरह की आज़माइशों से गुज़रते हुए मिस्र के सिहांसन पर पहूँचे। हज़रत यूसुफ़ के भाई उनके इस बुलन्दी और महानता से नावाक़िफ़ थे उनके दरबार में मदद के लिये हाज़िर हुए। उन्होंने उनकी भरपूर मदद की। उन्हें जब पता चला कि उनका यह एहसान करने वाला उनका वही भाई यूसुफ़ है जिसे वह कुऐं में फेंक आए थे तो शर्मिन्दगी से उनके सर झुक गये और अपनी

ग़लती को स्वीकार करने लगे। हज़रत यूसुफ़ ने उनकी तमाम ज़्यादतियों को भुला दिया और फ़रमायाः

> आज तुम्हें कोई इल्ज़ाम नहीं है। अल्लाह तुम्हें माफ़ करे वह बड़ा रहम करने वाला है। (यूसुफ़ः ९२)

दुनिया ने एक बार फिर उसी बुलन्द अख़लाक़, माफ़ी व दर गुज़र का नमूना रसूलुल्लाह सल्ल० की ज़िन्दगी में देखा। कुरैश के वह लोग जिन्होंने आपको हर तरह की तकलीफ़ें दीं और मक्के की धरती छोड़ देने और मदीना हिजरत करने पर मजबूर किया, जो ज़िन्दगी भर आपसे लड़ते रहे, जो आपके खून के प्यासे थे और जो आपके साथियों को इस ज़मीन से मिटाने पर तुले हुए थे, मक्का विजय के बाद सारे के सारे चुप-चाप आपके फ़ैसले के इन्तिज़ार में थे। आपने उनसे पूछाः ऐ कुरैश के लोगों बताओ मैं तुम्हारे साथ क्या मामला करने वाला हूँ? उन्होंने अपने तज्रबे की रोशनी में कहा, हमें आपसे ख़ैर व भलाई की उम्मीद है। आप शरीफ़ भाई हैं? और शरीफ़ भाई की औलाद हैं। आपने फ़रमायाः

> जाओ तुम सब आज़ाद हो। (सीरत इब्ने हश्शाम)

रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्ल० ने मक्का विजय के दिन सफ़वान बिन उमय्या, अबू सुफ़ियान बिन हरब और हारिस बिन हश्शाम को बुलवाया। हज़रत उमर रज़ि० फ़रमाते हैं कि मैने सोचा कि अल्लाह तआला ने आज भी मुझे इन (दुशमनों) पर क़ाबू अता किया है। लेकिन रसूलुल्लाह सल्ल० ने फ़रमायाः

> मेरी और तुम्हारी मिसाल ऐसी है जैसे हज़रत यूसुफ़ ने अपने भाइयों से कहा था। आज तुम्हारी कोई पकड़ नहीं है। अल्लाह तआला तुम्हें माफ़ करे।

हज़रत उमर रज़ि० फ़रमाते हैं कि ज़बाने मुबारक से इन

अल्फ़ाज़ को सुन कर मुझ पर शर्मिन्दगी तारी हो गई कि मैं क्या सोच रहा था और आप सल्ल० अख़लाक़ और नैतिकता की किस बुलन्दी से बोल रहे हैं। (इब्ने साद)

हज़रत अबू हुरैरह रज़ि० कहते हैं कि मक्का विजय के बाद रसूलुल्लाह सल्ल० ने बैतुल्लाह का तवाफ़ (परिक्रमा) किया। दो रकअत नमाज़ पढ़ी फिर काबा के पास आऐ और काबा की चौखट की दोनों पटियों को पकड़ कर (क़ुरैश से) कहा बताओ क्या कहते हो और क्या सोचते हो? उन्होंने जवाब दिया आप हमारे भाई हैं, चचा की औलाद हैं, सहनशील और दयालु हैं। यह अल्फ़ाज़ उन्होंने तीन बार दोहराए। रसूलुल्लाह सल्ल० ने फ़रमायाः आज तुमसे कोई पूछ गछ नहीं है। अल्लाह तुमको माफ़ करे वह सबसे बढ़कर रहम करने वाला है। हज़रत अबू हुरैरह रज़ि० फ़रमाते हैं कि इस ऐलान के बाद यह कैफ़ियत हो गई जैसे यह लोग क़ब्रों से निकल आए हों (उन्हें दोबारा ज़िन्दगी मिली हो) और फ़िर वह इस्लाम में दाख़िल हो गये।

(अल्लामा इब्ने जौज़ी रह०)

एक और मिसाल देखिये। गज़वा बनीअलमुसतलक़ में रसूलुल्लाह सल्ल० के साथ हज़रत आएशा सिद्दीका रज़ि० भी थीं। वापसी में उनका ज़ेवर एक जगह गिर गया, वह उसकी तलाश में क़ाफ़िले से पीछे रह गयीं और एक सहाबी हज़रत सफ़वान रज़ि० के साथ वापिस हुईं, उस पर कुछ मुनाफिक़ों ने बेतुकी बातें शुरू कर दीं और अल्लाह की पनाह आप रज़ि० पर इल्ज़ाम लगा दी। उनमें हज़रत मिसतह भी अपनी सादगी और भोलेपन की वजह से शरीक हो गये। यह हज़रत अबू बक्र रज़ि० के रिश्तेदार थे, बहुत ग़रीब थे। हज़रत अबू बक्र उनकी मदद किया करते थे,

इस घटना के बाद हज़रत अबू बक्र ने हाथ रोक लिया और क़सम खाई कि वह उनकी कभी मदद नहीं करेंगे इस पर अल्लाह तआला ने फ़रमायाः

> तुम में से वह लोग जो बडे दर्जे वाले हैं और हैसियत वाले हैं, वह रिश्तेदारों, ग़रीबों और महाजिरों की मदद न करने की क़सम न खाऐं। उन्हें चाहिये कि माफ़ी व दर गुज़र से काम लें। क्या तुम इस बात को पसन्द नहीं करते हो कि अल्लाह तुम्हारी मग़फ़िरत कर दे और अल्लाह माफ़ करने वाला और रहम करने वाला ही है। (अल नूरः २२)
>
> इस पर हज़रत अबू बक्र रज़ि० ने फरमाया,
>
> ऐ अल्लाह हम तो तेरे माफ़ी व करम के ही तालिब हैं और फिर हज़रत मिस्तह रज़ि० की जो मदद कर रहे थे, दोबारा शुरू कर दी और कहा ख़ुदा की क़सम अब मैं यह कभी बन्द नहीं करूंगा। (बुख़ारी)

माफ़ी व दर गुज़र के यह वह पाकीज़ा नमूने हैं, जिन्हें ईमान वालों को हमेशा सामने रखना चाहिये।

शीरीं कलामी (मीठे बोल)

कभी-कभार ज़बान के ग़लत इस्तेमाल से हालात ग़लत रुख इख्तियार कर लेते हैं और उन्हें मामूल पर लाना मुश्किल हो जाता है। नरमी के साथ गुफ्तगू हालात को बिगाड़ से बचाने और उन्हें बेहतर बनाने में सहायक होती है। इसका सामने वाले पर अच्छा असर पड़ता है और वह ठंडे दिल व दिमाग़ के साथ बात सुनने और ग़ौर करने पर आमादा होता है। नैतिकता और

अख़लाक का यह पहला ज़ीना है। इसी के बाद उसकी आला मन्ज़िलें तय होती हैं। बनी इसराइल को हिदायत की गयी थी।

लोगों से बात अच्छे तरीक़े से करो, नमाज़ क़ायम करो और ज़कात दो... (अल बक़राः ८३)

यहाँ एक बात क़ाबिले ग़ौर है वह यह कि नमाज़ और ज़कात से पहले अच्छे कलाम का ज़िक्र है उसकी एक वजह यह है कि मुख़ातब से पहला सम्बंध बात-चीत ही से क़ायम होता है। इसके लिये कभी-कभार उसकी अहमियत नमाज़ और ज़कात से ज़्यादा होती है। वह बात करने वाले की नमाज़ और ज़कात और दीन दारी को नहीं देखता बल्कि उसकी गुफ़्तगू के तरीक़े, शैली और अन्दाज़ को देखता है इसलिये हुक़्म हुआ कि लोगों से अच्छे और सभ्य अन्दाज़ से बात करो।

क़ुरआन मजीद ने ''क़ूलू लिन्नासे हुस्ना'' (लोगों से अच्छी गुफ्तगू करो) के अल्फ़ाज इस्तेमाल किये हैं। इसमें ज़्यादती पायी जाती है। इसका मतलब यह है कि तुम्हारी बातों में इन्तेहाई ख़ूबसूरती और मिठास हो। उसका एक-एक लफ्ज़ ख़ूबसूरती में डूबा हुआ हो। (अल्लामा ज़मख्शरी-अल कश्शाफ़)

ख़ूबसूरत गुफ़्तगू में यह बात भी शामिल है कि आदमी सलीक़ा और हिकमत के साथ हक़ बात कहे, न्याय और इन्साफ की बात कहे नैतिकता की शिक्षा दे। अल्लाह तआला के दीन का परिचय कराए, उसके बारे में जो ग़लत फ़हमियां हैं उन्हें दूर करे, उसे क़ुबूल करने की दावत दे, समाज में नेकी की ओर बुलाने और बुराई से रोकने का फ़र्ज़ अन्जाम दे। इससे समाज में आदमी का एतेबार क़ायम होता है। वह एक ख़ास नज़रिया रखने वाला और

सिद्धान्तवादी समझा जाता है। उसकी बातों को आसानी
अन्दाज़ नहीं किया जाता।

यही शिक्षा इस्लाम के मानने वालों को इन अल्फ़ा
गयी है।

मेरे बन्दों (मुसलमानों) से कह दो कि वही बात
बेहतर है। बेशक शैतान इन्सानों के दरम्यान फ़साद पैदा
है। शैतान इन्सान का खुला दुश्मन है। (बनी इसराइलः ५३

मतलब यह कि गुफ़्तगू का वह अन्दाज़ इख्तिया
जाए जो बेहतर हो जो गाली-गलौज, बदज़बानी, व्यं
कटाक्ष, सख्ती और कड़वापन, ज़ात पर हमले और आरो
इल्ज़ाम जैसी खराबियों से पाक हो, जिसमें मुहब्बत हो,
और नर्मी हो, दिल मोह लेने वाला अन्दाज़ हो और
मुख़ातब नफ़रत और दूरी की जगह एक तरह का खिंचाव
करे। इसकी वजह यह बताई गयी है कि ग़लत अन्दाज़े गु
शैतान को घुस आने का मौक़ा मिल जाएगा, वह सम्बो
जज़बात को भड़काएगा, बात को समझने और समझ में
तो क़ुबूल करने न देगा। ग़र्ज़ यह कि पूरा माहौल खराब क
देगा। शैतान को इसका मौक़ा नहीं देना चाहिये। यही
गुफ़्तुगु है।

दुशमन दोस्त बन जाऐंगे

यह बात ज़्यादा विस्तार के साथ दूसरी जगह बया
और उसके नैतिक प्रभावों का भी ज़िक्र है। इरशाद हैः

अच्छाई और बुराई बराबर नहीं होती है। बचाव
तुम उस तरीक़े से जो बेहतर हो तो तुम देखोगे कि

में और जिस शख्स से दुश्मनी है वह गोया गहरा दोस्त हो गया है। यह खूबी उन्हीं लोगों को मिलती है जिनमें सब्र व बरदाश्त का माद्दा होता है और यह उन ही को मिलती है जो बड़े नसीबे वाले होते हैं। अगर (ऐसे मौक़े पर) शैतान तुम्हें उकसाने लगे तो अल्लाह की पनाह तलब करो बेशक वह सुनने और जानने वाला है। (हा० मीम अस्सज़दा ३४-३६)

इन आयतों में से हर आयत और उसका एक-एक लफ्ज़ क़ाबिले ग़ौर है और मौजूदा हालात में बेहतरीन हिदायत और रहनुमाई का काम कर रहा है। फ़रमायाः

अच्छाई और बुराई किसी भी नैतिक नियम और क़ानून के तहत किसी भी होशमन्द की नज़र में और किसी भी हाल में बराबर नहीं हो सकते। अच्छाई को इज़्ज़त व एहतराम से देखा जाएगा। बुराई उससे वंचित होगी और ज़िल्लत व रूसवाई उसके हिस्से में आएगी। अच्छाई के असरात कुछ और होगें और बुराई के नतीजे कुछ और नेकी अपने साथ भलाई लाएगी और बदी के दामन में शर व फ़साद होगा। नेकी का अंजाम दुनिया में भी और आख़िरत में भी बदी के अंजाम से अलग होगा, इसलिये नेकी की राह इख़्तियार करो और बदी से दूर रहो। मुख़ालिफ़ अगर व्यंग और कटाक्ष कर रहा है, बुरा-भला, बदज़बानी और ग़लत बयानी से काम ले रहा है, झूठे इल्ज़ामात लगा रहा है और बदनाम करने की कोशिश कर रहा है

तो भी तुम्हारे लिये शोभा नहीं देता कि तुम भी वही रास्ता इख्तियार करो जो उसने किया है। इसलिये कि उसके बाद तुम में और उसमें कोई फ़र्क़ नहीं रहेगा। तुम्हारा रवइया नैतिक लिहाज़ से तुम्हारे मुख़ालिफ़ से और बुलन्द होना चाहिये। वह है 'इदफ़अ बिल्लती हिया अहसन' यानी बुराई को अच्छाई से दफ़ा करो। इसका मतलब यह है कि ग़लत बातों के खन्डन और उसके जवाब का तुम्हें पूरा हक़ है लेकिन उसके लिये वह तरीक़ा इख़्तियार करो जो बेहतर और सभ्य हो, जिसके बारे में दुशमन का दिल भी अन्दर से कहे कि शरीफ़ाना तरीक़ा इख़्तियार किया गया है। उसका नतीजा बहुत जल्द तुम्हारे सामने आएगा और तुम देखोगे कि जिस व्यक्ति से तुम्हारी दुश्मनी चली आ रही है उसकी दुश्मनी ख़त्म हो गयी है। वह तुम्हारा दोस्त ही नहीं बल्कि गहरा दोस्त हो गया है।

(हा० मीम० सजदा)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास रज़ि० फ़रमाते हैं कि इस आयत में मुख़ालिफ़ को बेहतर तरीके से जवाब देने की जो हिदायत की गयी है। उसपर अमल की दो सूरतें हैं। एक यह कि अगर वह ग़ुस्सा और आवेग का प्रर्दशन करे तो सब्र किया जाए और अगर वह ज़्यादती करे तो माफ़ कर दिया जाए। अगर ईमान वाले यह तरीक़ा इख़्तियार करें तो अल्लाह तआला उनकी हिफ़ाज़त करेगा और उनका दुशमन उनके सामने इस तरह झुक जाएगा, मानो वह बहुत क़रीबी दोस्त है। (बुख़ारी)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास रज़ि० का यह क़ौल मौजूदा हालात में रोशनी की हैसियत रखता है। ग़ुस्सा और तैश दिलाने की कोशिश के बावजूद उत्तेजित न होना और सख़्ती और ज़्यादती का जवाब माफ़ी व दर गुज़र से देना कामयाबी की चाभी है और छोटी-छोटी बात पर ग़ुस्सा करना और सब्र का दामन छोड़ बैठना हार और नाकामी की अलामत है।

आगे इरशाद हुआ

''यह चीज़ उन लोगों को हासिल होती है जो सब्र से काम लेते हैं और बड़ी किस्मत वाले होते हैं।''

(हा० मीम अस्सज़दा)

यानी यह आला किरदार और यह पाकीज़ा रविश वही लोग इख़्तियार कर सकते हैं जिन्हें अल्लाह तआला ने सब्र व जमाव की दौलत से नवाज़ा है, जो पहाड़ की तरह अपने मौक़िफ़ पर क़ायम रहें और जिनकी निगाहें अपने मक़सद और मिशन से कभी न हटें। जिन लोगों की निगाहें। मन्ज़िल पर होती हैं वह रास्ते के कूड़े-कचरे का ख्याल नहीं करते, रास्ते के कन्कर पत्थर और रोड़े उनके हौसले को कमज़ोर नहीं करते और कठिनाइयों में भी वह लगातार अपना सफर जारी रखते हैं। लेकिन यह हौसला व हिम्मत खुशकिस्मत इन्सानों और बड़े नसीब वालों ही को मिलता है।

इस सिलसिले की आखिरी हिदायत यह है कि इसमें सावधान किया गया है कि कभी ऐसा हो सकता है कि सारी कोशिश के बावजूद शैतान तुम्हें उकसाने लगे कि इतनी ज़्यादा मुख़ालफ़त हो रही है और आप मुंह बन्द किये बैठे हो, इतने गुस्से

के बावजूद तुम पर खामोशी छाई है, तुम भी ईंट का जवाब पत्थर से क्यों नहीं देते। आख़िर यह बुज़दिली और बेहिम्मती क्यों है? ऐसी सूरत में तुम ग़लत प्रतिक्रिया का शिकार हो सकते हो। उस वक़्त तुम्हें समझना चाहिये कि शैतान तुम्हें नैतिक गिरावट की तरफ़ ले जा रहा है। फ़ौरन तुम्हें अल्लाह की तरफ़ पलटना चाहिये और उससे दुआ करनी चाहिये कि वह तुम्हें शैतान की शरारत से सुरक्षित रखे। जो अल्लाह को पुकारे वह उसकी ज़रूर सुनता है और वह हर एक के हाल दिल से बाख़बर है।

गुरूर और घमन्ड से परहेज़

ग़ुरूर एक ऐसी नैतिक खराबी है जो सम्बंधों को बराबर की सतह पर रहने नहीं देता और बुलन्दी और पस्ती के झूठे जज़्बात उभारता है। जब इन्सान अपने आप को बड़ा और दूसरे को छोटा ख़्याल करेगा तो उसका रवइया उसके साथ लाज़िमन नफ़रत वाला होगा वह उसे बराबर से सुलूक का हक़दार नहीं समझेगा और उसके अधिकारों को मारने में भी उसे झिझक न होगी। घमन्ड का रोग किसी व्यक्ति में हो तो वह एक या कुछ लोगों के साथ घटिया और नाइन्साफ़ी का मामला कर सकता है, लेकिन अगर किसी क़ौम में यह बीमारी हो तो वह दूसरी क़ौमों को कमतर और तुच्छ समझेगी। उन्हें इज़्ज़त व आदर का मुक़ाम नहीं देगी और वह उसकी ज़्यादतियों का निशाना बनती रहेंगी।

घमन्ड और ग़ुरूर के बहुत से कारण हो सकते हैं। माल व दौलत की अधिकता, इल्म की ज़्यादती और योग्यता, सियासी व समाजी हैसियत, दूसरे की तहज़ीब और सभ्यता के मुक़ाबले में अपनी तहज़ीब और सभ्यता पर गर्व, अपनी परम्पराओं की

महानता का एहसास और शासन और सत्ता जैसे असबाब ग़ुरूर व घमन्ड पैदा करते हैं। इस्लाम ने बड़ी सख़्ती से ग़ुरूर व घमन्ड से मना किया है और उसे शैतानी जज़्बा क़रार दिया है।

हज़रत लुक़मान ने अपने बेटे को जो नसीहतें की थीं उनमें एक नसीहत यह थीः

लोगों से अपना रुख मत फेर और ज़मीन में इतरा कर न चल। बेशक अल्लाह किसी डींग मारने वाले और घमन्डी को पसन्द नहीं करता। (लुक़मानः १८)

इसमें इस बात की हिदायत है कि अपने आप को बड़ा न समझो, लोगों से बेरूखी न बरतो, यह घमन्ड की पहचान है। तहज़ीब, शराफ़त और शालीनता के साथ उनसे बात करो किसी को तुच्छ और कमतर समझ कर उसे सम्बोधित न करो। क़ुरआन मजीद ने 'वला तुसय्यिर' का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया है उसका मसदर (उदगम) ''तसईर'' है। भाषा विशेषज्ञों ने लिखा है कि तुसय्यिर ऊँट की उस बीमारी को कहा जाता है जिसमें उसकी गरदन एक तरफ़ झुक जाती है। और वह दूसरी तरफ़ देख नहीं पाता। उसमें इस बात की तरफ़ इशारा है कि घमन्ड की वजह से तुम्हारी वह कैफ़ियत न हो जाए जो ऊँट के अन्दर इस बीमारी की वजह से पैदा हो जाती है कि पलट कर देखना और सीधे मुंह बात करना मुश्किल हो जाए।

घमन्ड और ग़ुरुर का इज़हार इन्सान की रफ़्तार और चाल ढाल से भी होता है, इसलिये फ़रमायाः तुम्हारी चाल से ग़ुरूर न टपके, अंहकारियों की चाल न मालूम हो कि ज़मीन पर क़दम रखना मुशिकल हो रहा है, बल्कि शरीफ़ और सभ्य इन्सानों की तरह चलो, तुम्हारे चलने फिरने से नर्मी और विनम्रता का इज़हार

हो, यह महसूस हो कि यह एक शरीफ़ और संजीदा इन्सान है। उससे हर शख्स आसानी से मिल सकता है उसके सामने अपनी बात रख सकता है, वह हमारी बात सुनेगा और हमारे दुख दर्द में शरीक होगा। बेतकल्लुफ़ उसकी सोहबत व संगत इख़्तियार की जा सकती है। उससे वह नागवारी नहीं बल्कि ख़ुशी महसूस करेगा।

एक और मौक़े पर ग़ुरूर की चाल से इन अल्फ़ाज़ में मना किया गया हैः

> ''ज़मीन में अकड़ कर न चलो, तुम न ज़मीन को फाड़ सकते हो न पहाड़ों की बुलन्दी को पहुँच सकते हो। इन मामलों में से हर एक का बुरा पहलू तेरे रब के नज़दीक ना पसन्दीदा है''। (बनी इसराइलः ३७-३८)

इन्सान की हैसियत क्या है? एक मुटठी राख, एक बुलबुला पानी का, पाँच छः फिट का इन्सान फ़ख़्र करे तो किस बात पर करे? क्या वह ठोकर मारकर ज़मीन को फाड़ देगा या अकड़ कर और सर उठा कर पहाड़ों की बुलन्दी को पहुँच जाएगा तो फिर क्यों वह ग़ुरुर व घमन्ड का प्रदर्शन करता है? क्यों नहीं नर्मी और विनम्रता इख़्तियार करता। यही हक़ीक़त इस आयत में समझाई गयी है।

बहुत से लोग ज़बान से भी शेखी बघारते हैं और उनका रवइया भी घमन्ड भरा होता है। उसके विपरीत वह लोग भी आप को मिलेगें जो अपनी नम्रता, हीनता और कमज़ोरी का एलान करते नहीं थकते, लेकिन उनका पूरा वजूद गवाही देता है कि वह घमन्ड में डूबे हुए हैं यह दोनों रवइये ग़लत हैं। उससे इन्सान खुदा की रहमत और दया से दूर और इन्सानों की मुहब्बत से वंचित हो जाता है।